श्री विमलनाथ पुराण

श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास विरचित

-:संपादक:-

आचार्य वसुनंदी मुनि

प्रकाशक:

निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति रजि.

ॐ ह्रीं नमः

पंचम संस्करण : अगस्त 2017
प्रतियाँ :1,000

विमलनाथ पुराण

-:कृतिकार:-

आचार्य वसुनंदी मुनि

मंगलाशीषः

प.पू. षट्संत, सिद्धांत चक्रवर्ती दि.श्वेतपिच्छाचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

प्रकाशकः
निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति रजि.

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''
मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

आद्य वक्तव्य

आचार्य वसुनंदी मुनि

जिस प्रकार किसी क्षुधातुर अत्यंत निर्धन व्यक्ति को अकस्मात् यथेच्छ व स्वादिष्ट भोजन, देहानुकूल वस्त्राभूषण,नासापुटों को तृप्त करने वाले पदार्थ, नेत्रों को एकाग्र कर अपने आप में बाँध कर रखने वाले चित्ताकर्षक दृश्य, कर्णप्रिय व मनोहारी शब्द एवं भौतिक वैभव, यान वाहन, शय्या - आसन आदि मिल जाने पर उसके द्वारा अपनी प्रसन्नता को एक शब्द में या अल्प शब्दों मे व्यक्त कर पाना कठिन है, उसी प्रकार उस ज्ञानपयोनिधि रूपी चेतन निधि का वर्णन कर पाना भी अशक्य है, जिस प्रकार ज्ञान निधि से आत्मा परम पवित्र अवस्था को प्राप्त करती है, अनन्त सुख की प्राप्ति भी उसी ज्ञान के द्वारा ही संभव है, वह ज्ञान ही वैराग्य व संयम का कारण है, चित्त को एकाग्र कर ध्यान को उत्पन्न करने वाला है, चित्त को विशुद्ध करने वाला है, उसके बारे में कैसे कहा जा सकता है, गूंगा व्यक्ति गुड़ खाकर, आनंद तो ले सकता है लेकिन कह नहीं सकता । क्या कभी कोई मूक (गूंगा) व्यक्ति किसी बहरे व्यक्ति को मिष्ट शब्दों में अंतरंग के आनन्द को कह सकता है? अर्थात् नहीं । उस वस्तु का सही ज्ञान व आनंद तो उस वस्तु के सेवन करने से, मात्र अनुभव ही किया जा सकता है। तदैव प्रस्तुत ग्रंथ विमल नाथ पुराण के बारे में भी अल्प शब्दों में कुछ नहीं कहा जा सकता, इसका अनुभव आप स्वयं ही इसका आद्योपांत स्वाध्याय करके कर सकते हैं, तथापि संक्षिप्त में प्रस्तुत ग्रंथ की विषय वस्तु इस प्रकार है। प्रस्तुत विमलनाथ पुराण ग्रंथ में दस अध्यायों के माध्यम से ब्र. कृष्णदास जी ने विमलनाथ भगवान का हृदय ग्राही जीवन चरित्र प्रस्तुत किया है।

पहले अध्याय में :- राजा श्रेणिक का संक्षिप्त जीवन चरित्र, भगवान महावीर स्वामी के समवशरण का विपुलाचल पर्वत पर आना, समवशरण में तीर्थंकर विमलनाथ स्वामी, धर्मनामक बलभद्र, स्वयंभू नारायण, मधु नामक

प्रतिनारायण का चरित्र सुनने की इच्छा का राजा श्रेणिक द्वारा व्यक्त करना इत्यादि विषयों का सुन्दरतम वर्णन है।

दूसरे अध्याय में :- महापद्म देश की तृतीय खण्ड की रम्यकावती नामक नगरी का वर्णन, राजा पद्मसेन का राज्य, वैभव त्याग कर जिन दीक्षा लेकर 16 कारण भावना भाकर तीर्थंकर प्रकृति बंध करना, सहस्रार स्वर्ग के सुखों का सरल शब्दों में वर्णन है।

तीसरे अध्याय में :- विमलनाथ भगवान के गर्भ कल्याणक व जन्म कल्याणक का कथन, जन्माभिषेक का विवेचन, 60,000 वर्ष की पूर्ण आयु, 60 धनुष का उत्तम शरीर 15,000 वर्ष कुमार काल के सुख, पुण्य वैभवों का इस अध्याय में विशेष रूप से वर्णन है।

चौथे अध्याय में :- विमलनाथ तीर्थंकर के दीक्षा व ज्ञान कल्याणक का वर्णन, बलभद्र धर्म, स्वयंभू नारायण व मधु प्रतिनारायण के वैभव का वर्णन है।

पंचम अध्याय में :- विमलनाथ या विमल वाहन तीर्थंकर के समवशरण का आना छह ऋतुओं के फल फूलों का एक साथ आना, मंदर, मेरू नामक राज पुत्रों का जिन वंदना हेतु आना, धर्मोपदेश सुनना इत्यादि विषयों का सुगम भाषा में वर्णन है।

छठवें अध्याय में :- महाराज वैजयंत का अपने दोनों पुत्र संजयंत व जयंत के साथ जिनदीक्षा धारण करना, संजयंत मुनिराज का उपसर्ग सह कर मुक्ति गमन, जयंत का निदान से धरणेन्द्र पद प्राप्त करना, विद्युत्दृंष्ट विद्याधर पर धरणेन्द्र का कोप, आदित्याभ देव का समागम व धरणेन्द्र को सम्बोधन देना इत्यादि विषयों का सरल शब्दों में वर्णन है।

सातवे अध्याय में :- सिंहसेन के जीव श्रीधर देव की उत्पत्ति का कथन, वरधर्म मुनिराज का भद्रमित्र को उपदेश देना, भद्रमित्र की माँ का आर्त्त ध्यान से मरकर व्याघ्री होना, भद्रमित्र मुनिराज पर व्याघ्री द्वारा उपसर्ग, सत्यघोष पुरोहित का राजा सिंहसेन से बैर, बांधना, भद्रमित्र के जीव का मोक्ष को प्राप्त करना इत्यादि विषयों का वर्णन है।

आठवें अध्याय में :- रामदत्ता के जीव रत्नमाला और पूर्णचन्द्र के जीव रत्नायुध का अच्युत स्वर्ग में देव होना, सिंहसेन के जीव वज्रायुध का सर्वार्थ-सिद्धि विमान में अहमिन्द्र होना, इत्यादि विषय वर्णित है।

नौवें अध्याय में :- विमलनाथ भगवान के समवशरण का अंतिम विहार, योग निरोध करना, चतुर्थ शुक्ल ध्यान द्वारा, समस्त कर्मों को क्षयकर मोक्ष प्राप्त करना इत्यादि कथन है।

दशवें अध्याय में :- मेरू गणधर का आत्म ध्यान में लीन होना, उपसर्ग को समता से सहन करना, मंदर गणधर का भी केवल ज्ञान प्राप्त करना, मंदर मेरू दोनों गणधरों का मोक्ष प्राप्त करना इत्यादि विषय का विवेचन है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ मुनिराज, ऐलक जी, छुल्लक जी व सभी त्यागी व्रतियों के प्रति कृतज्ञता पूर्वक यथायोग्य - प्रतिवंदना व सुसमाधिरस्तु व धर्म वृद्धिरस्तु शुभाशीष । ग्रंथ प्रकाशक श्री सत्यार्थी मीडीया के सभी पदाधिकारी व सदस्यों को सपरिवार शुभाशीष, अपने न्यायोपार्जित धन का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावक - सपरिवार को धर्म प्रभावना व धर्म वृद्धि हेतु शुभाशीष ।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ छदमस्थ द्वारा जो भी त्रुटि रह गयीं हों तो तत्त्व जिज्ञासु विज्ञजन उन्हें क्षमा करें व आवश्यक समझें तो समुचित सुझाव भी प्रेषित करें तथा ग्रंथ में जो भी आपको अच्छा लगे उसे परम पूज्य राष्ट्रसंत सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य गुरुदेव श्री विद्यानंद जी मुनिराज का आशीर्वाद मानकर ग्रहण करें तथा सभी पाठकगण हंसवत् गुणग्राही दृष्टि बनाकर ग्रन्थराज का आद्योपांत स्वाध्याय कर स्व - पर कल्याण करें ।

इस प्रशस्त भावना के साथ

"सर्वेषा मंगलम् भवतु"

श्री शुभमिती मगशिर वैशाख वदी-11
शनिवार वासरे,
वी.नि संवत- 2543 वि.स 2074
श्री दि.जैन मंदिर
हाथरस (उ.प्र.)

कश्चिदल्पज्ञ
जिनचरणाम्बुज चंचरीक

ॐ ह्रीं नमः
22 - 4 - 2017

निर्ग्रंथ ग्रंथ माला समिति (रजि.) द्वारा वर्ष 2017 -18 में प्रकाशित होने वाले ग्रंथों के प्रकाशन में सहयोग करने वाले पुण्यार्जक श्रेष्ठीगण

1. अनिल कुमार जैन (नेपाल)
2. डा. नीरज जैन (दिल्ली)
3. रमेशचन्द गर्ग जैन (दिल्ली)
4. रिषभ जैन रोहिणी (दिल्ली)
5. अनीता जैन ग्रीनपार्क (दिल्ली)
6. पी.सी जैन कोसीवाले (दिल्ली)
7. निकुंज जैन ग्रेटर कैलाश (दिल्ली)
8. राजीव जैन सी.आर.पार्क (दिल्ली)
9. प्रवीन जैन (टोनी) (दिल्ली)
10. श्रवण कुमार जैन ग्रीन पार्क (दिल्ली)
11. मुकेश कुमार जैन यमुना विहार (दिल्ली)
12. मीनू जैन (दिल्ली)
13. रश्मीकान्तसौनी जैन (दिल्ली)
14. आशूतोष जैन (दिल्ली)
15. पूरनचंद जैन (अजमेर)
16. नवनीत जैन यमुना विहार(दिल्ली)
17. डा.अरूण कुमार जैन (यू.एस.ए.)
18. योगेश जैन (मेरठ)
19. अजय जैन (मेरठ)
20. अक्षत जैन (मेरठ)
21. राकेश जैन रेसवाले (मेरठ)
22. विपिन जैन असोड़ावाले (मेरठ)
23. अंकुर जैन अरहंत ज्वैलर्स (मेरठ)
24. अशोक जैन शाह बजाज (अजमेर)
25. विरेन्द्र जैन (बाड़मेर)
26. गोरव जैन (एटा)
27. महावीर जैन संदीप जैन (फिरोजाबाद)
28. सौनू जैन स्पोर्टस (फिरोजाबाद)
29. विनोद जैन मिलेनियम (फिरोजाबाद)
30. अनिल जैन (ग्वालियर)
31. पवन चौधरी (अलवर)
32. विजय जैन (अलवर)
33. रमेश जैन (अलवर)
34. घनश्याम जैन (अलवर)
35. अशोक जैन शास्त्रीपार्क (अलवर)
36. सुरेन्द्र जैन (अलवर)
37. गुलावचंद्र जैन गुलावी मसाला (अलवर)
38. अरूण जैन (अलवर)
39. एन.के.जैन (अलवर)
40. दिलीप जैन (अलवर)
41. पवन जैन (अलवर)
42. मनोज कुमार जैन (अलीगढ़)
43. डी.के जैन महागुन (नोएडा)
44. अजय जैन सेक्टर 61 (नोएडा)
45. अनिल जैन सेक्टर 41 (नोएडा)
46. सचिन जैन वैशाली (गाजियाबाद)
47. दर्शनदयाल जैन (हापुड़)
48. चंद्रसैन जैन (पलवल)
49. औमप्रकाश जैन (कोसी)
50. श्रीमती रजनी जैन (कामां)

श्री विमलपुराण भाषा

मंगलाचरण

सर्वेशं शंकरं सिद्धं, वृषीयांसं प्रजापतिम् ।
समीडकेऽकं सिद्धयै, लेखेशादीडितं जिनम् ।।

जगपालक जिनविमल पद, धर्मधुरंधर देव ।
बंदौं मनवचकाय करि, कीजै मम भव छेव ।।

सन्मति वीर जिनेश के, चरण कमल चितलाय ।
भाषा विमलपुराण की, लिखूं स्वपर सुखदाय ।।

जिन्होंने ज्ञानावरणादि आठों कर्मो को नष्ट कर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया, उन समस्त तीर्थंकर भगवान को मैं (ग्रन्थकर्ता) सविनय नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने मिथ्या ज्ञान से जलते हुए संसार रूपी पृथ्वीतल पर निर्मल ज्ञान की वृष्टि कर शान्ति उत्पन्न की, उन विमलनाथ की मैं बार - बार स्तुति करता हूँ। हिंसा आदि पाँचों पापों के नष्ट करने वाले उन पाँचों परमेष्ठियों के गुणों का मैं आदर के साथ स्तवन करता हूँ, जिनके सम्यग्ज्ञान आदि गुणों के समूह मोतियों के भूषण के समान सुशोभित होते हैं। मैं श्री वृषभदेव के श्रीमुख से निकली हुई संसार का कल्याण करने वाली द्वादशांग श्रुतवाणी को बार - बार नमस्कार करता हूँ। जिन्होंने कामदेव को सर्वथा नष्ट कर दिया है और

जिन्होंनें द्वादशांग श्रुतज्ञान के पार को पा लिया है, उन ध्यानी कल्याण करने वाले मुनियों को अपने चित्त में चितार कर बार- बार नमस्कार करता हूँ। जिनको बड़ी - बड़ी आकाशगामिनी आदि ऋद्धियाँ प्राप्त हो गई हैं, जो गाम्भीर्य, धैर्य आदि असंख्य गुणों के धारक हैं,

जिनके ज्ञान की महिमा अपरम्पार है, उन श्रीगुरुओं के चरणों का मैं बार - बार चिन्तवन करता हूँ। जिस प्रकार पूर्व आचार्य श्रीजिनसेन प्रभृति ने पुराण ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उसी प्रकार मैं भी श्री विमलनाथ भगवान के पुराण का वर्णन करना चाहता हूँ परन्तु कहाँ तो अगाध समुद्र के समान निर्मल बुद्धि के धारक वे आचार्य, और कहाँ तुच्छ बुद्धि का धारक मैं।

इसलिये यह काम अति कठिन है तथापि जिस प्रकार जहाँ सूर्य का प्रकाश नहीं पहुँचता, वहाँ दीपक अपना प्रकाश फैला ही देता है, उसी प्रकार मैं अपनी छोटी बुद्धि से इस पुराण के संक्षिप्तार्थ को कहूँगा। जिस प्रकार प्रंशसा के योग्य सज्जनों के कल्याण की मैं इच्छा करता हूँ,

उसी प्रकार जिसके डर से कविता में अशुद्धि नहीं आने पाती,उस दुर्जन के हित की भी मैं कामना करता हूँ। अथवा जिस प्रकार सुगंधित पुष्प की सुगंध हवा से अपने आप दशोंदिशाओं में फैल जाती है, उसी प्रकार गुणवती कविता भी अपने आप प्रसिद्ध हो जाती है। इस पुराण में बहुत से भव्य जीवों की कथाएँ हैं, धर्मनामक बलभद्र और स्वयंभू नामक नारायण और मधु नामक प्रतिनारायण का चरित भी लिखा गया है, इसलिये यह समुद्र के समान गंभीर है।

श्रेणिक राजा का चरित्र

पहला सर्ग

इस असंख्य द्वीप और समुद्रों से विराजित मध्यलोक में यह जम्बूद्वीप है। इसमें हिमवन आदि छह कुलाचल और गंगा, सिन्धु आदि नदी, पद्म आदि ह्रद और विद्याधरों के निवास स्थान, विजयार्ध पर्वत आदि अनेक रमणीक स्थान हैं। उसके ठीक मध्य भाग में सुमेरू पर्वत है और उसकी दक्षिण दिशा में भरत क्षेत्र है। उसके मध्य भाग में मगध देश है और राजगृह नाम का परम पवित्र नगर है। उस रमणीक नगर के राजा उपश्रेणिक थे, जो कि अपने गुणों से संसार में प्रसिद्ध यशस्वी थे, उनकी पटरानी का नाम इन्द्राणी था।

इन दोनों के अनेक दिन भोग भोगते एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, जिसका श्रेणिक नाम रखा गया। यह श्रेणिक अतिरूपवान, राजाओं के समस्त लक्षणों से भूषित और अतिशय बुद्धिमान था। राजा के अन्य पाँच सौ और भी पुत्र थे जिनके साथ वह नाना तरह के भोग भोगता हुआ सुख से राज्य करता था। परन्तु चन्द्रपुर का राजा सोमशर्मा इसकी आज्ञा को नहीं मानता था इसलिये एक पत्र लिखकर मतिसागर नाम के दूत को उसके पास भेजा। दूत ने सभा में जाकर सोमशर्मा को वह पत्र दिया। उसमें लिखा था कि "मेरी (उपश्रेणिक की) आज्ञा को समस्त सामंत, राजा, महाराजा मानते हैं, परन्तु एक तुम ही ऐसे हो, जो अपने घमंड में आकर नहीं मानते इसलिये तुम्हें यदि राज्य करने की इच्छा है, तो यहाँ आकर मिलो।" पत्र का समाचार पढ़कर

सोमशर्मा ने उस दूत को तो अपना सद्भाव बतला कर वापिस कर दिया परन्तु मन में उसने राजा के मारने के लिए कपट की बात सोची और उसके अनुसार उसने एक मायामयी घोड़ा विद्या से बनाकर अनेक प्रकार की बहुमूल्य भेंट के साथ उपश्रेणिक के पास भेजा। घोड़े को देखकर राजा उपश्रेणिक का मन ललचा गया और परीक्षा के लिये उस पर चढ़कर वन की तरफ चल दिया। घोड़ा तो बनावटी था ही, वह राजा को लेकर बहुत दूर निकल गया और एक गड्ढें में उसे पटक कर लापता हो गया।

श्रेणिक आदि समस्त पुत्र पिता की खोज में निकले परन्तु जब कहीं भी राजा को न पाया तो वे घर लौट गये। राजा के न मिलने से रानियों को बड़ा दुःख हुआ और वे उनके गुणों का स्मरण कर फूट - फूट कर रोने लगीं। इस तरह इधर तो यहाँ शोक बनाया जा रहा था और उधर उपश्रेणिक दुर्गन्धित गड्ढें में पड़े - पड़े पंचपरमेष्ठी का नाम जप रहे थे। उसी जगह वैवच्छ्वास नाम की भीलों की पल्ली थी, वहाँ का स्वामी क्षत्रिय राजा यम था। उसकी रानी का नाम विद्युन्माला था और उसके तिलकावती नाम की पुत्री थी। वह उस समय वहाँ क्रीड़ा के लिये आया था। उसने उपश्रेणिक की वह शोचनीय अवस्था देख बड़ा खेद किया और उनसे कुशल समाचार पूछे। उपश्रेणिक ने अपनी सारी कथा सुना दी और उसका वृतान्त पूछा।

उत्तर में भिल्लराज ने कहा कि मैं राज्यभ्रष्ट एक क्षत्रिय हूँ, पास ही मेरा वासस्थान है। आप मेरे घर पधारिये और इस कष्ट को दूर कीजिये। यमदण्ड की बात के उत्तर में उपश्रेणिक ने कहा कि आपके घर आचार आदि की मर्यादा नहीं है, एतएव मैं भोजन नहीं कर सकता। यह सुनकर यमदण्ड ने कहा कि राजन् ! यदि यह बात है तो मेरी पुत्री समस्त गुणों से युक्त तिलकावती नाम की श्रावकोचित भोजन बनाने में चतुर है, वह आपकी उचित शुश्रूषा कर देगी। उपश्रेणिक इस बात से सहमत हो गये और तिलकावती के रूप को देखकर मोहित हो उसके पिता से उसको माँगा। यह सुनकर यमदंड ने कहा कि "आपकी सैकड़ों रानियाँ हैं, एक से एक सुंदर हैं, ऐसी अवस्था में

मेरी पुत्री का सुखी होना कठिन है। पुत्रोत्पत्ति भी शायद होगी या नहीं और हो भी जायेगी तो उसका जीवन दूसरों की सेवा में ही जायेगा, इसलिये यदि आप मेरी पुत्री से उत्पन्न पुत्र को राज्य देना स्वीकार करें, तब तो मैं आपको यह कन्या दे सकता हूँ अन्यथा नहीं।" महाराज कामांध थे, उन्होंने यमदंड की उक्त बात स्वीकार कर ली और तिलकावती से विवाह कर सजधज के राजगृह नगर को लौट आये । खोये हुये महाराज को पाकर समस्त सामन्त और कुटुम्बियों ने हर्ष मनाया एवं वे भी सुख से रहने लगे ।

कालक्रम से तिलकावती के पुत्र उत्पन्न हुआ । उसका नाम चिलाती रखा गया । जिस समय वह युवा हो गया तो उपश्रेणिक को चिंता ने आ घेरा । वह सोचने लगे कि राज्य का अधिकारी तो श्रेणिक है परन्तु वर मैंने चिलाती को दे रखा है। ऐसी अवस्था में युवराज कौन बनाया जाए? महाराज ने एक निमित्त ज्ञानी (ज्योतिषी) को बुलाया और उनसे पूछा कि मेरे इन पुत्रों में से कौन राजा होगा? यह सुन ज्योतिषी ने लग्नादि देखकर पाँच निमित्त बतलाये और कहा कि आप अपने सब पुत्रों को चीनी का भरा एक - एक घड़ा घर ले जाने के लिये दीजिये । जो उसे अपने सिर पर न रख दूसरे से लिवा ले जाए, वही राजा होगा । दूसरे, जो पुत्र ओस के जल से घड़ा भरकर ले आये वही राज्य भोगेगा ।

तीसरे, आप सब पुत्रों को एक पंक्ति में बैठाकर खीर आदि मिष्ठान का भोजन कराइये और बीच में ही कुत्तों को उन पर छोड़ दीजिये, जो पुत्र उपद्रव के समय भी बिना किसी विघ्न बाधा के खाता रहे, उसे ही भावी राजा समझिये । चौथे, नगर में आग लग जाने पर जो छत्र, चमर और सिंहासन को लेकर भागे, वही राजसुख भोगेगा और पाँचवे, खाजे आदि पकवान से भरे पिटारे और जल से पूर्ण घड़ों का मुँह कपड़े से बंधवा दीजिये और उन्हें आप हर एक पुत्र को दे दीजिये और बिना खोले खाने के लिये कहिये, जो पुत्र यह कार्य करदे उसे ही राज्य का अधिकारी समझें । ज्योतिषी के कहे अनुसार इन परीक्षाओं में पुत्र श्रेणिक उत्तीर्ण हो गया । यह देख

उपश्रेणिक अति चिंतित हो सोचने लगा - आह ! मैंने चिलाती पुत्र को राज्य देने का वचन पहले दिया है, और लक्षणों से श्रेणिक ही राजा होता दीखता है, ऐसी अवस्था में क्या किया जाए? यदि चिलाती पुत्र को राज्य नहीं देता तो मेरा वचन मिथ्या सिद्ध होता है, जब वचन ही चले गये तो रह क्या गया? जिसके वचन मिथ्या हो जाते हैं । उसकी पुण्यादि शुभ क्रियाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। राजा की इस चिन्ता को सुमति मंत्री जान गया । उसने कहा कि "महाराज ! आपके घोड़े, हाथी, सुभट आदि सामग्रियाँ हैं। सुन्दर - सुन्दर स्त्रियाँ हैं, सब देशों के स्वामियों पर आज्ञा चलती है, ऐसी अवस्था में आपका चित्त चिंतित क्यों रहता है, उत्तर में उपश्रेणिक ने कहा कि "मैंने पहले चिलाती पुत्र को राज्य देना स्वीकार किया है और निमित्तों से श्रेणिक राजा होता दीखता है, यही मेरी चिंता का विषय है। राजा को चिंता मग्न जानकर मंत्री ने कहा "आप कुछ सोच - विचार मत कीजिये, मैं बहुत शीघ्र श्रेणिक को देश से निकाल दूँगा ।" इस प्रकार मंत्री राजा को स्वस्थ कर श्रेणिक के पास पहुँचा और मीठे वचनों से कुशलक्षेम पूछ, गौरवपूर्वक बोला - "कुमार ! आपका इस नगर में रहना ठीक नहीं आप पर राजा का प्रकोप है। यह सुन श्रेणिक ने उसका कारण पूछा ! उत्तर में मंत्री ने कहा - किसी नगरवासी ने राजा से तुम्हारी यह चुगली खाई कि कुमार श्रेणिक ने कुत्तों की जूठन खाई है, बस इसी बात पर राजा को क्रोध आ गया है । अतएव आप बिना विलंब किये चले जाइये अन्यथा राजा का कोप बड़ा टेड़ा होता है, उसके सामने विद्या वैभव आदि सब नष्ट हो जाते हैं" मंत्री की यह बात सुन, कुमार ने कहा कि जो लोग अपने भोजन को भी दूसरों से नहीं बचा सकते, वे राज्य की रक्षा कैसे कर सकते हैं? लोग तो इस बात की प्रशंसा कर रहे हैं, फिर राजा को क्रोध कैसे आ गया? तब मंत्री ने कहा कि यह ठीक है तो भी राजा की आज्ञा उल्लंघन नहीं करनी चाहिये, इसलिये तुम्हें चले ही जाना उचित है, मंत्री के इन दुर्वचनों से कुमार श्रेणिक खिन्न हो निकल गया । उसके साथ ही पाँच हजार योद्धा भी गुप्त भेष कर बाहर हो गये । पुत्र का देश निकाला सुन माता को बड़ा ही कष्ट हुआ

और वह शोकाकुल हो दिन बिताने लगी । कुमार श्रेणिक ने चलते - चलते नंदिग्राम में प्रवेश कर एक सभामंडप देखा और वहाँ कोतुक देखते - देखते वर ढूँढने के लिए आये हुए इन्द्रदत्त नामक एक वैश्य से मुलाकात हो गई।

उसको साथ लेकर ब्राह्मणशाला में भोजन माँगने गये परंतु, ब्राह्मणों ने उन्हें यू ही टाल दिया । वहाँ से दोनों एक बौद्ध मठ में पहुँचे । उस जगह एक सन्यासी ने इन्हें पहचानकर सत्कार से भोजन कराया । उसके बाद उसने इन्हें बौद्ध धर्म का उपदेश दिया और कहा कि इस धर्म के धारण करने से तेरा गया राज्य लौट आयेगा । श्रेणिक ने उसे स्वीकार कर लिया और आगे चल दिये । मार्ग में इन्द्रदत्त से श्रेणिक ने कहा - मामा ! चलो अपने जिह्वारथ पर सवार होकर शीघ्र- शीघ्र चलें । श्रेणिक की यह बात सुन इन्द्रदत्त ने मन में कहा - यह कोई मूर्ख लड़का दिखता है। भला ! जिह्वा पर चढ़कर कहीं चला जाता है? थोड़ी दूर जाकर मार्ग में पानी भरा मिला । उस समय श्रेणिक पैरों में जूते पहनकर चलने लगा । यह देख इन्द्रदत्त इसकी मूर्खता समझ हँसने लगा । आगे चलकर एक हरे - भरे वृक्ष के नीचे वे लोग बैठे ।

इस समय श्रेणिक ने अपना छाता तान लिया । इन्द्रदत्त तो इसे मूर्ख पहले से ही समझ चुका था, अब सोचने लगा कि पेड़ के नीचे छाया में छाता सिवाय इस मूर्ख के कौन लगायेगा? आगे चलकर एक गाँव पड़ा । उसे देख श्रेणिक ने इन्द्रदत्त से पूछा - मामा ! यह गाँव बसा हुआ है या उजड़ा है? श्रेणिक की यह बात सुनकर इन्द्रदत्त को यह निश्चय हो गया कि अवश्य यह लड़का पागल है। अन्यथा आदमियों से भरे हुए इस गाँव को उजड़ा या बसा हुआ क्यों पूछता? इसके बाद थोड़ी दूर आगे चलकर अपनी स्त्री को मारते हुऐ पुरुष को देख श्रेणिक ने पूछा - सेठजी ! बताइए तो यह स्त्री बंधी हुई है या छूटी हुई? सेठ ने अब की बार भी उसे पागल समझ कुछ उत्तर न दिया । इतने में एक मुर्दा दिखलाई दिया । उसे देख श्रेणिक ने कहा - कहिये ! यह अभी मरा है या पहिले का मरा हुआ है? इसके थोड़ी दूर आगे एक हरे - भरे धानों का खेत मिला। उसे देख श्रेणिक ने कहा - यह खेत खा लिया गया है

अथवा आगे खाया जाएगा? इसके थोड़ी दूर जाकर एक हल दिखलाई पड़ा।

उसे देख श्रणिक ने पूछा - इस हल के कितने मालिक हैं? फिर एक बेर का पेड़ दिख पड़ा। उसे देखकर श्रेणिक ने कहा - मामा ! इस पेड़ में कितने तरह के काँटे हैं? श्रेष्ठी ने इन प्रश्नों को सुनकर श्रेणिक को पक्का मूर्ख समझ लिया और इसी तरह तर्क - वितर्क करते - करते जब इन्द्रदत्त का गाँव वेणातड़ाग आ गया तो श्रेणिक से उसने पूछा कि कहो यहाँ से आगे और कहाँ जाओगे? उत्तर में श्रेणिक ने बनियों की रूखी मित्रता को मन ही मन धिक्कारते हुए कहा कि मैं तो इस तालाब के किनारे अभी बैठता हूँ, आगे फिर कहीं जाऊँगा। इंद्रदत्त 'अच्छी बात है ! पर आगे मेरे बिना पूछे कहीं न जाना' यह कहकर इन्द्रदत्त अपने घर चला गया। नागकुमारी के समान सुंदरी नंदश्री नाम की एक कन्या उस सेठ के थी। पिता को थके हुए आये देखकर उसने पूछा - पिताजी ! आपके साथ कोई और भी आया है? उत्तर में इंद्रदत्त बोला - हाँ ! एक मूर्ख मेरे साथ आया है, यह सुन नंदश्री ने उसकी मूर्खता का वृत्तांत पूछा और सेठ ने सब पहली गुजरी बात ज्यों की त्यों कह सुनायी।

नंदश्री उन बातों को सुनकर बड़ी खुश हुई और पिता से बोली - वह मूर्ख लड़का नहीं है। उसने जितनी बातें आपसे कहीं, सब बुद्धिमानी की हैं। उसने मामा कहकर तो आपमें अपनी पूज्य बुद्धि प्रकट की। जिह्मरथ पर चढ़कर चलने से उसका मतलब बातचीत करते हुए चलने का था। पानी में जूता पहनकर वह काँटे, कंकण आदि छिद जाने के भय से चला था। पेड़ के नीचे छाता तानकर इसलिए बैठा था, कि कोई पक्षी ऊपर से मूत्र या वीट न कर दे। नगर को बसा या उजड़ा इसलिए पूछा था कि जिस गाँव में दानी धर्मात्मा रहते हैं, वह तो असल में आदमियों से भरा हुआ है, नहीं तो ऊजड़ के ही समान है। स्त्री को छूटी या बंधी हुई पूछा था, उससे उसका मतलब रखी हुई है या विवाहिता है? यह था। मुर्दे को आज का या पहिले का मरा हुआ पूंछा। उससे उसने यह बतलाया कि इसने जीवन में कोई, दया, अहिंसा, दान आदि किये या यों ही मर चला। खेत को खाया हुआ वा खाए जाने वाला पूछा

था, उसका मतलब यह था कि –

इस खेत पर मालिक ने कहीं कर्ज तो नहीं कर रखा है? एक हल को देखकर उसके अनेक स्वामियों को पूछने से यह तात्पर्य था कि, इस किसान का एक महाजन है अथवा बहुतों से कर्ज ले रखा है? बेर के काँटे पूछने का यह अभिप्राय था कि दुर्जन के वचनों के समान इसके अनेक काँटे हैं या एक। इसके बाद नंदश्री ने कहा कि पिताजी वह बुद्धिमान कहाँ है? इंद्रदत्त ने उत्तर दिया कि वह तालाब के किनारे बैठा है। यह सुन नंदश्री ने अपने मन में उसकी परीक्षा लेने की ठानी और विपुलमती दासी को पास बुलाकर कहा कि तू नाखूनों में तेल भरकर तालाब पर जा और वहाँ पिताजी के साथ आए हुए पुरुष को तेल लगाकर नहाने के लिये कह आ। पुत्री की आज्ञानुसार दासी ने जाकर श्रेणिक से कहा कि सेठ जी ने लगाने के लिए तेल भेजा है। आप इसे लगाकर स्नान कर घर पधारिये। दासी की यह बात सुन कुमार ने तेल को तो पानी में डालने के लिए कह दिया और घर चलने के लिये कारण पूछा। उत्तर में विपुलमती ने कहा कि जिस सेठ के साथ आप आए है, उसके गुण और रूप की खान नंदश्री नाम की एक पुत्री है, उसने आपको बुलाया है। यह सुन कुमार ने पूछा कि तुम्हारा घर कहाँ है? उत्तर में वह दासी अपना ताड़पत्र का वना कर्णभूषण दिखाकर चली गई।

उधर नंदश्री ने भी अपने घर के दरवाजे पर पानी फैलाकर कींचड़ करा दी और पत्थर के टुकड़े रखवा कर स्वयं कौतूहल देखने लगी। कुमार श्रेणिक ताड़ के चिन्ह से पहचानकर नंदश्री के घर पहुँचे और दरवाजे पर कींचड़ देख सोचने लगे कि नगर में कहीं तो कीचड़ नहीं देखी, फिर वह यहाँ ही क्यों है? अवश्य इसमें कुछ रहस्य है। इसके सिवा भीतर प्रवेश करने के लिये पत्थर के टुकड़े डाल रखे हैं। यदि इन पर पैर रखकर मैं जाऊँगा तो अवश्य ही गिर पड़ूँगा और तब देखने वाले मेरी हँसी करेंगे। यह विचार कर वह कीचड़ में होकर ही गये। नंदश्री यह कौतुक छिपकर देख रही थी। उसने कुमार के पैर धोने के लिये दासी के हाथ अंजुलिप्रमाण (पसोंभर) जल भेजा।

कुमार को अब नंदश्री की चालाकी का पता लग गया।

उन्होंने पहले तो बाँस की खप्पच से अपने पैरों की कींचड़ छुड़ाई और फिर उस अंजुलि प्रमाण पानी से ही अपने पैर धोकर साफ कर लिये। इसके बाद नंदश्री ने उन्हें भोजन के लिये बुलाया और सत्कारपूर्वक यथास्थान बिठाकर अभीष्ट भोजन करने के लिये कहा। कुमार ने उत्तर में नंदश्री की प्रशंसा करते हुए कहा कि मेरे पास केवल बत्तीस चावल हैं, उनके बने हुए घी - शक्कर आदि से मिश्रित पदार्थ खाने की ही मेरी प्रतिज्ञा है। यदि तुम बना सको तो में भोजन कर सकता हूँ। कुमार की बात सुन नंदश्री ने कहा - लाइये, उन चावलों को दीजिये मैं उनसे ही आपके लिए अभीष्ट पदार्थ बना दूँगी। इसके बाद उन चावलों को लेकर उन्हें नंदश्री ने पीस डाला और एक पूआ बनाकर अपनी दासी से उसे बेच आने के लिये कहा। दासी उस पुए को जुआरियों के अड्डे पर ले गई और वहाँ यह कहकर कि देवताधिष्ठित पुआ है, जो इसे खरीदेगा, वही अधिक धन जीतेगा।

दासी ने बहुत से द्रव्य से उसे बेच दिया। नंदश्री ने उस द्रव्य से वस्तुएँ खरीदकर नाना तरह के खीर, पूरी, पूआ आदि पकवान बनाकर तैयार कर दिये और यहाँ तक कि उसी में से पान भी खरीदकर खिला दिया। कुमार की चतुराई और सौंदर्य से नंदश्री और नंदश्री की चतुराई और सुंदरता से कुमार दोनों परस्पर में आसक्त हो गए और जब इन्द्रदत्त को मालूम पड़ा तो उसने उन दोनों का एक साथ विवाह कर दिया एवं वे परस्पर सुख से रहने लगे। कालक्रम से भोग क्रीड़ा करते करते नंदश्री के गर्भ रह गया और उससे वह कृश होने लगी। यह देख श्रेणिक ने उससे एकांत में इसका कारण पूछा। नंदश्री ने विनय के साथ उत्तर दिया कि - स्वामिन् ! मेरे गर्भ रह गया है और ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई है कि, इस समस्त देश में अभयदान का प्रचार हो। अपनी प्यारी की यह बात सुन श्रेणिक को उसके पूर्ण करने की चिन्ता हुई और वह उसी सोच - विचार में नदी के किनारे जाकर पहुँचा। इधर कुमार तो दोहला पूर्ण करने का उपाय सोचने में लगे कि इतने में उस नगर के राजा

वसुपाल का हाथी आलानस्तंभ (बाँधने का खंभ) को तोड़कर नगर में नाना तरह के उपद्रव करता हुआ उधर ही आ निकला।

उसे देख कुमार की पूर्व चिंता तो दूर हो गई और उस हाथी को वश में करने का विचार हो गया। मदोन्मत्त उस हाथी को कुमार ने मुष्टियों से मारा और नाना तरह के वीरतापूर्ण कौशल से उसे निर्मद कर वशीभूत कर लिया। अब तो कुमार की प्रशंसा सब लोग करने लगे। उनकी वीरता पर प्रसन्न हो राजा वसुपाल ने भी सम्मान किया और कहा कि आपकी जो इच्छा हो वह मुझसे माँग लीजिए। उत्तर में कुमार ने सात दिन तक समस्त देश में अभय प्रचार करने की इच्छा प्रगट की और इस तरह नंदश्री की इच्छा पूर्ण हो गई। गर्भ के दिन पूर्ण हो जाने पर नंदश्री के पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई और दोहले के अनुसार उसका नाम 'अभयकुमार' रखा गया।

अभयकुमार परम सुन्दर और बुद्धिमान था। वह सुखपूर्वक बढ़ने लगा और कालक्रम से विद्याभ्यास के साथ वह यौवन की तरफ पैर रखने लगा। इस तरह स्त्री पुत्र के साथ सुखपूर्वक उस वेणातडाग ग्राम में वास करते श्रेणिक को तो कुछ दिनों के समान बहुत वर्ष बीत गए और उधर उनके पिता राजा उपश्रेणिक ने जब अपनी आयु का क्षय निश्चित जान लिया तो समस्त सामंतों के सामने चिलाती को राज्य दे परलोक प्रयाण किया। राज्य पाकर चिलाती उच्छृंखल हो गया। इंद्राणी चोरों के समान दुःख से रणवास में रहने लगीं और अच्छे - अच्छे कर्मचारियों को निकाल कर उसने दुष्ट दुर्जन स्वभाव के लोग नियत कर दिये।यह देख प्रधानमंत्री ने श्रेणिक को एक गुप्त पत्र लिखकर भेजा। श्रेणिक पत्र के समाचार को पढ़कर बहुत ही प्रसन्न हुआ और वह इंद्रदत्त की आज्ञा ले पुत्र स्त्री को वहीं छोड़ वेषधारी पाँच हजार योद्धाओं के साथ राजगृह की तरफ चल पड़ा। श्रेणिक को जब सैन्य सहित आते सुना तो, चिलाती बहुत - सा द्रव्य साथ ले नाना के पास जंगल में भाग गया। अब श्रेणिक के लिए सिंहासन खाली था। वह राजा के योग्य छत्र, चंमर आदि सामग्री से भूषित हो अपने नगर में आया और शुभ मुहूर्त में

सिंहासन पर बैठ राज्य करने लगा एवं बहुत से - देशों को विजय कर अधिकार में मिलाकर सुख से रहने लगा । एक दिन आकाशगति नामक विद्याधर ने राजसभा में आकर राजा श्रेणिक से कहा कि राजन् ! विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण में केरला नाम की एक नगरी है।

उसका राजा मृगांक है और उसकी रानी मेरी बहिन मालतीलता है उनके विलासवती नाम की एक सुन्दर लड़की है। एक दिन सुमति नामक मुनि महाराज से मेरे बहनोई ने "उस लड़की का पति कौन होगा?" यह बात पूछी । उत्तर में मुनिराज से पराक्रमी राजा श्रेणिक का नाम सुन वह निश्चिंत हो गया । इधर मराल द्वीप के राजा रत्नचूड़ ने उस लड़की को परम रूपवती देख याचना की । जब मेरे बहनोई ने उससे मनाई कर दी तो वह सेना ले लड़ने के लिए चढ़ आया है और नगर को घेरकर पड़ाव डाले पड़ा है। यह देख मैं आपके पास खबर देने दौड़ा आया हूँ। अब आपको जो दिखे सो कीजिए। विधाधर की यह बात सुन राजा श्रेणिक क्रुद्ध तो हुए परन्तु भूमिगोचरियों की वहाँ गति न होने के कारण कुछ कह न सके । राजा श्रेणिक को चुप देख जम्बू नामक एक व्यक्ति ने नमस्कार किया और वह विद्याधर के साथ केरला नगरी को चल दिया।

जम्बू ने वहाँ जाकर पापी रत्नचूड़ के साथ युद्ध किया और उसके आठ हजार वीरों को मारकर उसे बाँध लिया । इसके बाद उसे लेकर मृगांक और कन्या के साथ राजगृह को लौट आया परन्तु महाराज श्रेणिक को विन्ध्याटवी के केरल पर्वत पर ठहरे जान कर वह सबके साथ वहीं गया । श्रेणिक ने उन लोगों के साथ अति प्रेम दिखलाया और कन्या को ब्याहकर नगर लौट आए एवं उसके साथ सुख से रहने लगे । अथानन्तर श्रेणिक नन्दिग्राम के लोगों की दुष्टता का ख्याल कर उन लोगों को लूटने के लिए कुछ आदमी नियुक्त करने का प्रबन्ध करने लगे । यह देख मंत्रियों ने नम्रतापूर्वक आकर कहा कि - महाराज ! बिना छिद्र - दोष देखे दंड देना उचित नहीं, पहले कोई दोष देखिए फिर दंड दीजिए, जिससे न्याय का न्याय हो जाए और

आपकी इच्छा भी पूरी हो जाए।

मंत्रियों की इस बात से श्रेणिक सहमत हो गए और उनके पास एक मेढ़ा भेजकर समाचार भेजा कि मेरे इस मेढ़े को अपने यहाँ रखो परन्तु न तो यह मोटा ही होने पाए और न दुबला ही अर्थात् ज्यों का त्यों रहे। यदि इसमे अंतर हो जाएगा तो मैं सर्व गाँव को लूटकर देश से बाहर निकाल दूँगा। राजा की ऐसी आज्ञा पाकर नन्दिग्राम के ब्राह्मण बड़े ही चिन्तित हुए। इतने में अपनी पुत्री और उसके पुत्र अभयकुमार के साथ इन्द्रदत्त श्रेणिक को राजसिंहासन पर अभिषिक्त जान मिलने के लिए जा रहा था, उससे उनकी भेंट हो गई। अभयकुमार ने ब्राह्मणों को चिन्तित देखकर चिन्ता का कारण पूछा,उत्तर में ब्राह्मणों ने यथार्थ बात कह सुनाई।

अभयकुमार ने उन्हें समझाकर कहा - भाइयों ! इसमें चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, आप लोग इस मेढ़ें को अच्छे - अच्छे अन्न पकवान खिलाकर दो बाघों के बीच में रख दिया करें। खाने - पीने से यह जितना मोटा होगा बाघों के डर से उतना ही दुबला हो जाएगा। अभयकुमार के वचनों को युक्तियुक्त जानकर ब्राह्मणों ने वैसा ही किया और पन्द्रह दिन बाद मेढ़े को जैसे का तैसा भेज दिया। राजा ने जब उसे जैसा का तैसा देखा तो आश्चर्य में डूब गया। इसी प्रकार अन्य प्रश्नों के उत्तर नन्दिग्राम वालों से मँगाए गए परन्तु अभयकुमार की सहायता से उन लोगों ने सबका उचित उत्तर दे दिया। श्रेणिक ने कुल दस बातें तलब की थीं और वे यह थीं कि - मेढ़े को एक सा रखकर भेजे, बावडी लावें, हाथी का वजन करें, काठ के ऊपर - नीचे का भाग बतलावें, तिल के बराबर तेल दें, गाय - भैंस आदि जानवरों से भिन्न - भिन्न का दूध दें, एक ही मुर्गा लड़ावें, बालू की बटी रस्सी भेंजे, घड़े के भीतर कुम्हड़ा (काशीफल/कद्दू) रखकर भेंजे, दिन और रात के सिवा अन्य समय पर आकर मिलें परन्तु वे न तो मार्ग से ही आवें और न कुमार्ग से ही। जिस समय राजा ने उन लोगों के पास उक्त अन्तिम आज्ञा भेजी तो वे अभयकुमार के कहने से गाड़ियों के नीचे छींकों को बँधवाकर उनमें बैठकर

आए। उस समय दोनों वक्त (संध्या) मिले थे और गाड़ी का एक पहिया मार्ग (लीख) पर चलाया गया था और एक कुमार्ग (बेलीख) पर।

इसके बाद वे सब अभयकुमार के साथ राजा से मिले। श्रेणिक ने अपने पुत्र का स्नेह से आलिंगन किया और उसकी बुद्धि की प्रशंसा की। अभयकुमार के कहने से ब्राह्मणों को क्षमा कर श्रेणिक आनन्द से रहने लगा। नन्दश्री को तो उसने प्रधान महिषी बनाया और अभयकुमार को युवराज पद से अभिषिक्त कर मंत्री का पद सौंपा। इस प्रकार सर्वत्र बौद्ध धर्म का प्रचार करते महाराज श्रेणिक को,बीतता हुआ काल कुछ मालूम नहीं हुआ। अथान्तर उसी नगर में सागरदत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसके दो स्त्रियाँ थीं। उनमें से वसुमित्रा के एक पुत्र हुआ था। सेठ के मर जाने पर वसुमित्रा की सौत वसुदत्ता ने लड़ाई ठान दी और कहने लगी कि यह पुत्र तो मेरा है। बढ़ते - बढ़ते विवाद श्रेणिक के दरबार में आया और उसने उसे अभयकुमार के हाथ सौंप दिया। कुमार ने कुछ देर विचारने के बाद लड़के को धरती पर रखवाया और हाथ में छुरी लेकर कहा कि - जब दोनों ही पुत्र अपना - अपना बतला रही हैं, तब इसको आधा - आधा करके दोनों को दे देता हूँ।

यह बात सुन वसुमित्रा का हृदय स्नेह से उमड़ आया। उसने यह कहकर कि - इसे मत काटिये, आप उसे ही दे दीजिये, यह मेरा पुत्र नहीं है, उसी का है, अपना अभियोग उठा लिया। कुमार अभय को अब असली बात जानने में कुछ कठिनाई न पड़ी। उसने वसुमित्रा को पुत्र दे दिया और वसुदत्ता को दंडित किया। एक दिन की बात है कि उसी नगर के रहने वाले बलभद्र नामक किसान की सुंदर स्त्री भद्रा को देखकर वसन्त नामक एक क्षत्रिय कामासक्त हो गया। उसने दूती भेजकर उसे अपने में अनुरक्त कर लिया और प्रतिदिन रमण करने लगा। किसी दिन उस पापिनी ने वन में एक मुनिराज को देखा और वह काम से विह्वल हो, उनसे रमण करने की प्रार्थना करने लगी। उत्तर में मुनिराज ने उसको उस पाप से घृणा दिलाते हुए कहा

"पापिनी ! तू अपने बलवान् पति को छोड़कर परपुरुष से रमती है। देख ! ये भोग तो सर्प के समान भयंकर हैं, नित्य दुःख देने वाले हैं और सौन्दर्य के नाशक हैं, इनका सज्जन लोग आदर नहीं करते।

शील भंग करने से पाप लगता है, पाप से यह प्राणी नरक जाता है और नरक में अवचनीय दुःख भोगता है।" मुनिराज का यह उपदेश और अपने पाप की बात उनके मुख से सुन भद्रा शीलव्रत ले घर चली आई। इसके बाद बसन्त ने उसके पास दूती भेजी, बहुत से द्रव्य का लोभ भी दिया परन्तु किसी प्रकार से जब भद्रा न आई तो वह उसका उपाय सोचने लगा। इसके कुछ दिन बाद उसी नगर में कापालिक (मंत्रवादी) आया। लोगों के मुख से उसकी प्रशंसा सुन बसन्त भी गया और प्रतिदिन नाना प्रकार के व्यंजन पकवान ले जाकर सेवा करने लगा। जब कापालिक संतुष्ट हो गया तो उससे उसने बहुरूपिणी विद्या माँगकर सिद्ध कर ली। एक दिन काम से विह्वल बसन्त जबकि आधी रात थी, भद्रा के घर के पास जाकर मुर्गे की बाँग देने लगा। बलभद्र ने सवेरा हो गया जानकर अपने पशु खोले और खेत की तरफ चल दिया। बसन्त ने मौका पाकर बलभद्र का रूप बनाया और घर में घुस आया। भद्रा ने उसकी चाल से पहचान कर हल्ला मचाया।

इतने में बलभद्र लौट आया। अब तो वे दोनों परस्पर झगड़ने लगे और समान रूप वाले वे राजदरबार में पहुँचे। उन्हें देख अभयकुमार ने कहा, जो इस तुमड़ी के छेद में घुस जाएगा, वही सच्चा बलभद्र समझा जाएगा यह सुन बसन्त तुरंत उस छेद में घुस गया। यह देख कुमार ने उसको दंड दिया और भद्रा वास्तविक पति को दे दी। इसके बाद श्रेणिक महाराज की कुएँ में पड़ी मुंदरी अपनी बुद्धि से निकालकर अभय ने सबको ही आश्चर्य में डाल दिया। इस प्रकार अभयकुमार की बुद्धि की सर्वत्र प्रशंसा फैल गई। अथान्तर अमरावती नगरी में भरत नाम का एक चित्रकार रहता था। उसने एक समय पद्मावती महाविद्या सिद्ध की और उससे यह वर माँग लिया कि वह बिना देखे पदार्थ का भी चित्र अंकित कर सके। अब तो वह भरत सुन्दर - सुन्दर चित्र

बनाने लगा और उससे संसार में प्रसिद्ध हो गया।

सिन्धु देश की विशाला नगरी का राजा चेटक था। उसके सुभद्रा नाम की पटरानी और उससे उत्पन्न सुन्दर गुणवती सात पुत्रियाँ थीं जिनमें पहली प्रियदत्ता सिद्धार्थ नृप को विवाही गयी थी, दूसरी पिनाक को, तीसरी दशरथ को और चौथी प्रभावती महानुदयी (उदयन) को विवाही गयी थी। बाकी तीन अविवाहित थीं। एक समय चित्रकार भरत उस राजा के यहाँ आया और सातों पुत्रियों के काढ़े गये चित्र को उसने दिखलाया जिसे देख राजा बड़ा खुश हुआ। एक दिन तीनों लड़कियाँ मिलकर चित्रकार के पास जा हँसकर बोली कि - इस चेलिनी का नग्न रूप काढ़ दो तो जानें। चित्रकार को महाविद्या सिद्ध थी ही, उसने उसका गुह्य तिलकों से युक्त चित्र काढ़ दिया। यह बात किसी चुगलखोर ने राजा से कह दी जिससे वह चित्रकार पर बहुत की क्रुद्ध हो गया। यह जान चित्रकार भय से राजगृह नगर में भागकर जा पहुँचा और वह सुन्दर चित्र श्रेणिक को दिखला दिया।

चेलिनी की सुन्दरता पर श्रेणिक मुग्ध हो गये। उन्होंने चित्रकार से इसका सब वृत्तान्त पूछा और उसकी प्राप्ति दुर्गम जान मन ही मन चिन्ता करने लगा। उसी समय सभा में अभयकुमार आ गया और पिता को चिन्तित देख चिन्ता का कारण पूछने लगा। श्रेणिक ने अपनी बात हालत कह सुनायी। उत्तर में अभयकुमार ने कहा कि - यह कोई चिन्ता की बात नहीं है, मैं आपकी इच्छा पूरी कर दूँगा। राजा ने कहा - यह बात तो ठीक है, परन्तु वह राजा जैन धर्म का अनुयायी है और मैं बौद्धधर्मावलम्बी हूँ। वह मुझे कभी अपनी लड़की देने को राजी न होगा। यह सुन कुमार अभय बोला कि इसका मैं उपाय कर लूँगा। इसके बाद अभयकुमार ने जैनधर्म के भक्त एक वैश्य का भेष बनाया और कुछ जैन लोगों को साथ ले वह विशाला नगरी में जा पहुँचा। वहाँ रत्नों की भेंट ले, राजा चेटक से मिला। राजा ने प्रसन्न हो नगरी में ठहरने का आग्रह किया और कहा कि जैन धर्म के धारण करने वाले तो मेरे परमप्रिय मित्र और बंधु बांधवों के समान हैं। उत्तर में अभयकुमार ने रणवास

के समीप ठहरने का घर माँग लिया और वहाँ रहने लगा।

एक दिन अभयकुमार जिन पूजा करने खड़ा हुआ था, कि तीनों कन्या आइ और उससे नाम आदि सब पूछने लगीं। अभयकुमार ने कहा कि हम राजगृह से आए हैं, जहाँ का राजा श्रेणिक है। इसी प्रकरण में श्रेणिक का चित्रपट भी खोलकर दिखला दिया। बस ! अब क्या था वे तीनों ही उस पर मोहित हो गईं और पूछने लगीं कि ऐसा जिनधर्मी वर हमें कहाँ मिल सकता है? अभयकुमार कन्याओं के दिल की बात समझ गया। उसने सुरंग द्वारा चलने का उपाय बतलाया। सुरंग में कुछ दूर चलकर ज्येष्ठा तो हार के बहाने और चंदना अपनी अँगूठी लाने के छल से पीछे लौट गईं, चेलिनी अकेली रह गई। उसे अभयकुमार लेकर अपने नगर की तरफ चला गया। चेलिनी सहित अभयकुमार का आना सुन श्रेणिक अनेक सुभटों के साथ सत्कारपूर्वक लेने के लिये आया और जिनमती नामक जिनमंदिर में चेलिनी का पाणिग्रहण कर सुखी हुआ। जब चेलिनी को यह बात मालूम हुई कि श्रेणिक जैन धर्म के आचार से रहित बौद्धधर्मावलम्बी है, तो वह मन ही मन रोने लगी और अभयकुमार सरीखे पंडितों की ठगई जान दुखित हुई।

यहाँ तक कि उसका खाना - पीना तक छूट गया और वह कृश होने लगी। राजा ने यह देख उससे असली बात पूछी। उत्तर में उसने दुःख के साथ कहा कि - जैन धर्म के समान श्रेष्ठ दूसरा इस संसार में धर्म नहीं है, और तुम्हारे उस धर्म का बिल्कुल भी पक्ष नहीं है। इसलिये मैं तुम्हारे घर आकर कुस्थान में पड़ गई हूँ, यही चिन्ता मुझे दिन रात सताती रहती है। यह सुन श्रेणिक बोला कि महाधर्म तो एक बौद्धधर्म है जिसके प्रभाव से धन, राज्य आदि सब संपत्ति मिल जाती है। चेलिनी ने कहा - रागद्वेष से रहित, ध्यान में लीन, समस्त पदार्थों के ज्ञाता और कर्मफल रहित एक जिन भगवान् हैं और वे ही जीवों को संसार से तार देने में समर्थ हैं। समस्त परिग्रह से रहित जिन भगवान् की आज्ञा में चलने वाले मुनिराज ही सच्चे गुरु हैं। इनके सिवा सब मिथ्या हैं। श्रेणिक ने इसका और कुछ उत्तर न दिया। वे बोले - अच्छी

बात है, तुम अपनी इच्छा के अनुसार पूजा आदि धर्माचरण किया करो।

एक दिन श्रेणिक से रानी का जिनधर्म में पक्ष सुनकर बौद्ध गुरुओं का संघ समझाने के लिए आया और बोला कि - पशुओं के समान नग्न रहने वाले जैन साधु तो कुगुरु हैं उनकी आज्ञा नहीं मानना चाहिए। देख ! हम लोग ज्ञान समुद्र के पार तक पहुँचे हुए हैं। यह सुन रानी ने कहा - यदि आप सर्वज्ञ हैं, तो मेरे यहाँ भोजन कीजिए फिर मैं आपका धर्म धारण कर लूँगी। बस ! बौद्ध साधुओं को निमंत्रण दिया गया और उनके जूते कुछ तो नीचे पृथ्वी में गड़वा दिए और कुछ भोजन में मिलाकर खिला दिये। इसके बाद जब जूते न मिले और उल्टी (वमि) हो गई, तो उन साधुओं को बड़ी लज्जा आई और चेलिनी की शिकायत राजा से जाकर की। राजा ने चेलिनी से आकर कहा - देख ! बौद्ध धर्म से बड़ा धर्म इस संसार में नहीं है। सुनकर चेलनी ने कहा - आपका कहना ठीक है परन्तु मैं आपके गुरु जिस समय ध्यान में लीन हो बैठेंगे, उस समय परीक्षा कर आपके धर्म को ग्रहण करूँगी। इसके बाद मठ में जिस समय बौद्ध साधु ध्यान करने बैठ गये, उस समय चेलनी ने अपनी एक सखी से वहाँ आग लगवा दी।

मठ में आग लगी देख बौद्ध साधु इधर - उधर भाग खड़े हुए। रानी का यह कृत्य जब श्रेणिक ने सुना, तो उन्होंने दुःख से कहा कि यह निंदनीय कर्म तूने क्यों किया? तू तो दया धर्म के पालने में सुचतुर जैनधर्मावलंबिनी है, फिर जीवों को जलाने का यह उपाय क्यों रचा? राजा का यह उपालंभ सुन रानी ने मुस्कराकर कहा कि - महाराज ! मैंने तो यह समझा था, कि इन साधुओं की आत्मा इस समय मोक्ष में चली गई है, केवल देह ही यहाँ है और जब इनका ध्यान भंग हो आत्मा लौटकर फिर देह में आ आयेगी तो इनको संसार में भटकना पड़ेगा। संसार में दुःख ही दुःख है, यह आप जानते ही हैं। इनको सदा मोक्ष सुख का भोग करते रहने के लिये ही मैंने उस घर में आग लगवा दी थी। इस संबंध में एक कथा भी है, उसे सुनिये वत्स देश में कौशांबी नामक एक नगरी है। किसी समय उसका राजा वसुपाल और रानी

यशस्विनी थी। उसी नगर में सगर चक्रवर्ती के समान धनी सागरदत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम वसुमती था।

उसी नगर में समुद्रदत्त नाम का एक और सेठ रहता था और उसकी स्त्री का नाम अहिदत्ता था। उन दोनों में परस्पर यह बात ठहर गई थी कि पुत्र या पुत्री होने पर उन दोनों का परस्पर विवाह कर देंगे। इसके कुछ समय बाद सागर दत्त को वसुमती के गर्भ से साँप के आकार का एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम सुमित्र रखा गया। समुद्रदत्त के नागदत्ता नाम की पुत्री उत्पन्न हुई और पूर्व प्रतिज्ञानुसार दोनों का विवाह कर दिया। एक दिन अपनी माता को रोती हुई देखकर नागदत्ता ने रोने का कारण पूछा। उत्तर में माता ने कहा कि तेरा रूप तो चन्द्रमा को भी लजाने वाला है, पर तेरा पति साँप के आकार का है। इसी बात को विचार कर मैं रोती हूँ। यह सुन नागदत्ता बोली - माता ! दुःख करने का कोई कारण नहीं है, वह रात्रि को साँप का कलेवर छोड़कर मनुष्य का रूप धारण कर मेरे संग रमण करते हैं। सुबह हो जाने पर फिर साँप बन जाते हैं।

इसके उत्तर में माता ने कहा - बेटी ! यदि यह बात है तो वह साँप का कलेवर मेरे पास भेज देना। लड़की ने अवसर पाकर एक दिन वह कलेवर माता के पास भेज दिया और माता ने उसे अग्नि में जला भस्म कर दिया। बस ! फिर वह सुमित्र सदा मनुष्य के रूप में ही रहने लगा। महाराज ! मैंने तो ऐसी ही बात समझ कर घर में आग लगवायी थी, कि बौद्ध साधु तो सब मोक्ष ही चले गये हैं, व्यर्थ के इन कलेवरों से क्या मतलब? रानी की बात से निरुत्तर हो, श्रेणिक चुप हो चले गये। एक दिन श्रेणिक शिकार खेलने किसी वन में जा निकले। वहाँ यशोधर मुनिराज विराजमान थे। उनको देखकर साथी सुभटों से श्रेणिक ने पूछा कि यह नग्न, तेजस्वी निश्चल कौन खड़ा है? उत्तर में सुभट बोले कि - महाराज ! यही चेलिनी के गुरु हैं। यह सुनकर श्रेणिक को बड़ा क्रोध आया। उसने अपने मन में विचारा कि मेरे गुरुओं का चेलिनी ने बहुत भारी अपमान और विघ्न किया है इसलिये इस समय उसका

बदला क्यों न लिया जाए? बस ! यह सोचकर उसने मुनिराज पर अपने शिकारी कुत्तें छोड़ दिए परन्तु वे उनकी शांत मुद्रा को देखकर शांत हो पैरों में बैठ गए।

यह देख श्रेणिक ने सोचा कि अवश्य इस पाखंडी ने कुत्तों को कील दिया है इसलिये उन्होंने स्वयं एक भयानक साँप मारकर उनके गले में डाल दिया। चौथे दिन रात्रि को जब यह बात श्रेणिक ने चेलिनी से कही तो उसे महादुःख हुआ और बार - बार शोक करने लगी। यह देख श्रेणिक ने कहा - इसमें शोक की कोई बात नहीं है। वह पाखंडी अपने मंत्र के बल से साँप को हटाकर कहीं चला गया होगा। रानी ने उत्तर दिया - महाराज ! यदि वास्तव में वे मेरे गुरु होंगे तो अवश्य वहाँ ही विराजमान रहे होंगे। बस ऐसा कहकर वह उसी समय श्रेणिक को साथ लेकर गई और वहाँ ध्यानारूढ़ मुनिराज को देखकर हाहाकार करने लगी। पहले षंडासी से उनके गले का साँप हटाया, चींटियाँ दूर कीं और फिर चरणों में नमस्कार कर भक्ति प्रगट की।

मुनिराज ने उपसर्ग दूर हुआ जान अपना ध्यान भंग किया और दोनों को ही धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। मुनिराज के शत्रु-मित्र में समानभाव देख श्रेणिक को बहुत भारी दुःख हुआ वह अपने मन में बार - बार पश्चाताप कर सोचने लगा कि मैंने मुनि को मारने का बहुत बड़ा भारी पाप किया है। मुनिराज ने उसके मन का अभिप्राय जानकर कहा कि राजन् ! दुःख करने की इसमें कोई बात नहीं है। शुभ - अशुभ कर्म का फल तो अवश्य भोगना ही पड़ता है। मुनिराज की बात सुनकर श्रेणिक चेलिनी से बोले कि ये मेरे मन की बात कैसे जान गये? चेलिनी ने उत्तर दिया -

इस छोटी सी बात जानने में क्या धरा है ? यह तो आपके पूर्व जन्मों का समस्त वृतान्त भी कह सकते हैं। चेलिनी की बात सुनकर श्रेणिक ने मुनिराज से अपने पूर्व भव पूछे और मुनिराज भी गंभीर वाणी में कहने लगे। इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र के आर्यखंड में एक सूरकांत नाम का देश है। उसमें सूरपुर नगर का राजा मित्र और रानी श्रीमती थी। उनके पुत्र का नाम

सुमित्र था। प्रधानमंत्री मतिसागर के भी रूपिणी स्त्री से सुषेण नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ था और वे दोनों पुत्र सदा एक साथ खेला करते थे। उनमें राजपुत्र मंत्रीपुत्र को सदा तंग किया करता था और पृथ्वी पर गिराकर मुक्कियों से मारा करता था। किसी समय वे जलक्रीड़ा करने जाते थे और कमलों के पत्तों के नीचे पानी में डूबकर स्नान किया करते थे।

विवेकी सुमित्र को जिस समय राज्य मिल गया, तो मंत्रिपुत्र सुषेण ने भ्रम में आकर सोचा कि यह मुझे जब लड़कपन में ही दुःख दिया करता था, तो इस समय तो अवश्य ही देगा। बस ! यह सोचकर वह वन में मुनिराज के पास जा दीक्षित हो मुनि हो गया एवं शास्त्रों को पढ़ने लगा। सुमित्र अपने मित्र को देखने के लिए उसके घर गया और जब उसे दीक्षित सुना तो बहुत दुःखी हुआ। एक समय राजा अपने वन में मुनिराज को आया सुन वन्दना के लिए गया और नमस्कार कर बोला कि - मित्र ! घर लौट चलो। मैं तुम्हें अपना आधा राज्य दे दूँगा। राजा की बात सुन मुनि सुषेण ने कहा - भाई ! इस तप की महिमा अपरम्पार है, इसके प्रभाव से राज्य की तो क्या बात, स्वर्ग और मुक्ति तक के सुख प्राप्त हो जाते हैं। जब राजा ने देखा कि यह लौटने वाले नहीं हैं तो वह बोला यदि आप तप ही करने में राजी हैं, तो मेरे घर भोजन करने के लिए तो अवश्य आना।

इसके उत्तर में मुनिराज ने कहा कि - ऐसा करने में भी व्रत में अनुमोदना का दूषण लगता है और वह लगाना अनुचित है। बस ! मुनिराज का उत्तर पाकर राजा चुप हो गया और नमस्कार कर अपनी प्रजा की रक्षा करने लगा। एक समय उसने नगर में डोंढी पिटवा दी, कि मुनिराज को कोई आहार न दे, उनको मैं ही आहार दूँगा। मुनिराज एक मास का उपवास कर पारणा के लिए नगर में आए परन्तु किसी ने भी उन्हें आह्वान नहीं किया। जिस समय राजद्वार पर वे आए उस समय बैरी का दूत आया था और उसकी चिन्ता में राजा ने आये हुए मुनिराज न जान पाये। मुनि ने वन में जाकर फिर एक महीने का उपवास मांड दिया और फिर जब पारणा के लिए नगर में गए

तो राजा का हाथी आलानस्तम्भ तोड़ मदमस्त हो उपद्रव करने लगा। अतः फिर मुनि का आगमन राजा को मालूम न हो सका। मुनि फिर एक मास का उपवास मांड वन में चले गये और जब फिर पारणा के लिए आए तो नगर में आग लग जाने से किसी की दृष्टि उन पर नहीं पड़ी।

अतंराय हो जाने से मुनि वन की तरफ लौटने लगे तो उन्हें देख कुछ लोग कहने लगे - देखो ! यह राजा बड़ा पापी है, न तो स्वयं मुनिराज को आहार देता है और न दूसरों को देने देता है। मुनि के कान में जब यह बात पड़ी तो उन्हें क्रोध आया और उसी आवेग में उनका पैर स्खलित हो गया, जिससे राजा के मारने का निदान करते हुए उनके प्राण छूट गये और वे व्यन्तर योनि में पैदा हुए। राजा को जब मुनि का मरण मालूम हुआ तो वह बहुत दुःखी हुआ और कुतपस्वी हो मरकर देव हुआ वहाँ से चयकर तुम श्रेणिक हुए हो। वह तुम्हारे खून का प्यासा सुषेण का जीव भी इस चेलिनी के गर्भ में आ गया है। इसका नाम कुणिक होगा और निश्चय से तुम्हें पिंजड़े में कैद कर दुःख देगा। यह सुन श्रेणिक को भी जाति स्मरण हो गया और जब वृतान्त यथार्थ जाना तो वह जिनधर्म का श्रद्धानी हो घर लौट आया।

राजा को जैनधर्म में दीक्षित हुआ सुन बौद्ध साधु आकर कहने लगे कि - तुम जैनी होते हो तो हो जाओ पर परीक्षा, करके होओ। इसके बाद राजा ने एक जगह हड्डी गड़वाकर रानी से कहा कि जैन मुनियों को आहार कराओ। रानी को राजा की चालाकी मालूम हो गई, इसलिए उसने आये हुए तीन मुनियों को तीन अँगुलियों का इशारा कर पड़िगाहन किया जिसका तात्पर्य यह था कि आपके तीनों गुप्ति हों तब तो ठहरिए,नहीं तो नहीं। उत्तर में मुनिराज दो अँगुली दिखाकर चले गये। गुणसागर नाम के मुनिराज को जब वही इशारा कर पड़िगाहन किया, तो वह तीनों गुप्ति स्वीकार कर स्थित हो गये। राजा ने उनके चरण धोये और भीतर घर में आहार के लिए ले गये, परन्तु मुनिराज ने अपने अवधिज्ञान से जब हड्डी अपवित्र वस्तुएँ समझीं तो अंतराय समझ बिना आहार किए ही वन को लौट गए। यह देख राजा ने रानी से पहले तीनों मुनियों के न ठहरने का कारण पूछा। रानी ने कहा - मुझे नहीं मालूम है,

चलिए उनसे ही वन में जाकर पूछें। तदनन्तर वे दोनों वन में जाकर धर्मघोष नामक मुनिराज के पास पहुँचकर नमस्कार कर बोले-

स्वामिन् ! हमारे यहाँ चर्या के लिए गए और यों ही क्यों लौट आए? उत्तर में मुनिराज ने कहा - राजन् ! उस समय तुम्हारी स्त्री ने हमें यह इशारा किया था, कि यदि आपके तीनों गुप्ति हों तब तो ठहरिये, नहीं तो नहीं।

हमारे तीनों गुप्ति नहीं थी इसलिये नहीं ठहरे। राजा ने पूछा - तो आपके कौन - सी गुप्ति नहीं है? मुनिराज बोले, सुनो - मैं कलिंग देश के दंतपुर नगर का राजा था। मुनि हो एक समय विहार करता - करता कौशाम्बी नगरी में आया और वहाँ के राजमंत्री गरुड़ और उसकी स्त्री गरुड़दत्ता ने मुझे आहार के लिये पड़िगाहन किया। जिस समय वह ग्रास देने लगी तो मेरे हाथ से स्वयं वह गिर पड़ा। ग्रास के साथ मेरी दृष्टि जब नीचे की ओर गई तो उस गरुड़दत्ता के पैर के अँगूठे को देखकर अपनी स्त्री के अँगूठे की याद आ गई। बस इसलिए राजन्। मेरे मनोगुप्ति नहीं है। इसके बाद राजा उठकर जिनपाल मुनिराज के पास गया और उनसे भी अपने यहाँ न ठहरने का कारण पूछा।

उत्तर में उन्होंने भी कहा कि - मेरे वाग्गुप्ति नहीं थी इसलिए नहीं ठहरा ! इसका भी कारण यह है कि - भूमितिलक नगर का राजा प्रजापाल है। उसके धारिणी रानी से मृगांका नाम की कन्या उत्पन्न हुई। उसके रूप की प्रशंसा सुन चंडप्रद्योतन नामक राजा ने उसे माँगा, परन्तु प्रजापाल देने के लिए राजी न हुआ तो युद्ध ठान दिया। युद्ध में प्रजापाल हारकर जब खिन्न हो बैठा था, कि उसी समय वनपाल ने आकर मेरे (जिनपाल) आने की उसे खबर दी और वंदना के लिए आकर "मेरी रक्षा कीजिए, मैं बहुत दुःखी हूँ" आदि विनय के वचन कहने लगा। इसी समय वनदेवता ने उसे आश्वासन देकर भय न करने के लिए कहा। प्रजापाल ने वे वचन मेरे मान लिए और मुनि के वचन तो सदा सत्य ही होते हैं, ऐसा समझकर वह संतुष्ट हो घर चला गया और युद्धक्षेत्र में फिर आ डटा।

चण्डप्रद्योतन को जब यह मालूम हुआ कि प्रजापाल की ही अन्त में विजय होगी और वह जैनी है तो अपने घर की तरफ लौटने लगा।

यह देख प्रजापाल ने उसके पास सुभट भेज पुछवाया कि बिना रण किए बिना ही वह क्यों जा रहा है? उत्तर में चण्डप्रद्योतन बोला कि - जैनी मात्र मेरे सहधर्मी होने से बन्धु हैं। भला उनके साथ मैं युद्ध कैसे कर सकता हूँ चण्डप्रद्योतन से यह उत्तर पाकर जब सुभटों ने प्रजापाल से कहा तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी लड़की उसे विवाह दी।

एक समय चण्डप्रद्योतन ने क्रीड़ा करते समय मृगांका से कहा कि तेरा पिता जैनी होने के कारण मैंने युद्ध में छोड़ दिया था। इसके उत्तर में मृगांका ने कहा - स्वामिन्! मुनिराज जिनपाल ने उन्हें अभय दिया था, इसलिए वे जीते न जा सके। रानी की इस बात से असम्मत हो उसने कहा - मुनि तो शत्रु- मित्र में समान भाव रखते हैं, उनके राग - द्वेष होता ही नहीं। यदि कदाचित् तुम्हारा कहना ही ठीक हो तो चलो चलें उनसे ही असली हाल पूछें। अब वे दोनों मुनिराज के पास पहुँचे और नमस्कार कर बोले कि - महाराज! किसी का अभय और किसी का नाश विचारना क्या जैन शास्त्रों में कहा गया है? मैं यह सुन ध्यान करने लगा।

यह देख मृगांका ने कहा - नहीं उस समय मुनिराज ने कुछ न कहा था बल्कि आकाशवाणी हुई थी। इस प्रकार उन दोनों का भ्रम मिट गया और वे घर चले गए। मैं जब तुम्हारे भवन में भोजन करने आया तो चेलिनी ने कहा कि - तीनों गुप्ति हों तो ठहरिए। हमारे वे थी नहीं इसलिए चले आए। इसका भी कारण यह था कि जिनके तीनों गुप्ति रहती हैं, उनके नियम से अवधिज्ञान रहता है, जिससे वे सब जान सकते हैं। श्रेणिक जैन साधुओं की प्रशंसा कर आगे बढ़ा और श्रीमणिमाली तीसरे मुनिराज से अपने भवन से लौट आने का कारण विनयपूर्वक पूछने लगा। उत्तर में मुनिराज ने कहा कि - राजन्! मेरे कायगुप्ति न थी इसलिए मैं नहीं ठहरा। उसका भी वृतान्त तुम सुनो - "मणिवत् देश में मणिवत् नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा मैं

मणिमाली नाम का था। मेरी रानी गुणमाला थी और मणिशेखर नाम का पुत्र था। मैं नाना तरह के भोग भोगने में आसक्त था।

एक दिन मेरे केशों को संभालते हुए गुणमाला ने कहा कि - देखिये ! यमदूत (श्वेत बाल) आ गया, अब शीघ्र आत्महित कीजिए। यह सुन मैंने अपना राज्य तो पुत्र को दिया और ज्ञानसागर गुरु के पास जा दीक्षा ले ली। राजन् ! एक दिन मैं उज्जयनी के शमशान में ध्यान करने बैठा था, कि एक मंत्र सिद्ध करने वाला कौलिक हड्डी के आभरण पहन बैतालीय महाविद्या सिद्ध करने के अभिप्राय से वहाँ आया। उसने मेरी देह को मुर्दा समझा इसलिए दूसरा एक और मुर्दे का मस्तक उसके पास लाकर रख दिया। इस तरह उसने चूल्हा बनाकर खीर पकाने के लिए आग जलाना प्रारंभ किया। ज्यों - ज्यों आग जलती, त्यों - त्यों मेरे मस्तक में नरक के समान असह्य पीड़ा होती, परन्तु मैं आत्मध्यान में लीन था। जब मेरी नसें सिकुड़ने लगीं तो मेरे दोनों हाथ खड़े हो गए और दूध फैल गया। यह देख डर से कौलिक भाग गया। जब दिन हुआ तो वनमाली ने मुझे उक्त आपत्ति से ग्रस्त देख जिनदत्त आदि श्रावकों से यह समाचार कहे। वे लोग शोकाकुल हो मेरे पास आये और हाथों पर उठाकर मुझे नगर में ले गए। वहाँ मैं जिनदत्त के घर में रखा गया। जिनदत्त ने अच्छे एक वैद्य को मुझे दिखला कर औषधि पूछी।

वैद्य ने कहा कि लाक्षामूल के तेल से यह व्याधि जाती रहेगी। 'वह तेल कहाँ मिलेगा?' पूछने पर वैद्य ने कहा कि वह तेल सोमशर्मा के घर में है। जिनदत्त तेल लेने के लिए वहाँ गया और उस ब्राह्मण की स्त्री तुंकारिका से बोला कि - बहिन ! मुनिराज की दाह शांत करने के लिए तेल दे दो और जो मूल्य हो ले लो। उत्तर में तुंकारी ने कहा कि मैं मूल्य तो लेती नहीं। ऊपर अटारी में काँच के घड़े रखे हैं, उनमें से जितना चाहो ले लो। जिनदत्त ऊपर जाकर ज्योंही काँच के घड़े को उठाने लगा त्योंहि वह फूट गया। नीचे आकर भयभीत हो तुंकारी से घड़े फूटने के समाचार कहे। उत्तर में उसने कहा -फूट जाने दो, तुम दूसरा ले जाओ परन्तु जब दूसरा घड़ा उठाने गया तो वह भी

फूट गया। जिनदत्त ने फिर आकर जब तुंकारी को सूचना दी, तो उसने तीसरे घड़े को उठा ले जाने के लिए कहा परन्तु दैवात् वह भी फूट गया।

इस तरह सातों घड़े एक - एक कर जिनदत्त से फूट गए परन्तु तुंकारी को बिल्कुल क्रोध न आया। यह देख जिनदत्त ने आश्चर्य में आकर उससे पूछा कि - बहिन ! मैंने तेरी इतनी हानि कर दी तो भी तू मुनि के समान शांत क्यों बनी है? तुंकारी ने कहा भाई ! मैं क्रोध का फल भोग चुकी हूँ, इसलिए उसके फंदे में नहीं पड़ती। इसका वृत्तांत इस प्रकार है कि - आनंदपुर नगर में राजा के समान धनी शिवशर्मा नाम का एक सेठ रहता है। उसकी स्त्री का नाम कमलश्री है। उनके आठ पुत्र हुए और भट्टा नाम की मैं लड़की पैदा हुई। एक समय पिताजी ने राजा से जाकर कहा कि - महाराज ! ऐसी आज्ञा कर दीजिये कि आप व आपका कोई भी नगरवासी मेरी पुत्री को त्वंकार न कहें। सेठ की यह बात राजा ने स्वीकार कर ली।

अब तो मैंने सबसे स्पष्ट कह दिया कि जो कोई मुझसे "त्वं" कहेगा उसका अनिष्ट बिना किये मैं कभी न मानूँगी। इसलिए उसी समय से मेरा नाम लोगों ने त्वंकारी रख दिया। इस तरह पिता के घर में, मैं सत्कार के साथ परन्तु क्रोध करती हुई रहती थी। एक समय श्री गुणसागर नाम के मुनिराज आए और राजा आदि जब उनकी वंदना के लिए गये तो मैं भी उनके साथ गई। वहाँ मुनिराज से सबने संसार को नष्ट करने वाले अपनी - अपनी शक्ति अनुसार व्रत लिए। मैंने भी बिना किसी प्रकार की ईर्ष्या के शील पालने का नियम लिया। मैं भाइयों के साथ आनन्द से रहने लगी परन्तु मेरा कर्कश स्वभाव जानकर कोई भी विवाह करने को राजी न होता था। जब मेरी यौवन अवस्था आरंभ हुई तो माता - पिता वर खोजने की चिंता करने लगे। एक समय सोमशर्मा जुए में सब अपनी द्रव्य हार गया था और उसे जुआरी मिलकर मुक्कियों से मार रहे थे। इतने में मेरा पिता वहाँ पहुँच गया और उससे बोला कि यदि तू मेरी लड़की के साथ विवाह करना स्वीकार कर ले तो मैं तुझे छुड़ा दूँ। सोमशर्मा ने यह स्वीकार कर लिया और पिताजी ने

जुआरियों का कर्ज चुका दिया। साथ ही उसे इस बात की भी सूचना दे दी कि वह मेरी पुत्री से कभी त्वंकार न कहेगा। आखिर सोमशर्मा के साथ मेरा विवाह हो गया और हम भोग भोगने लगे।

एक दिन मेरा पति नाट्यशाला में तमाशा देखने गया था और वह आधी रात के बाद आकर दरवाजे पर किवाड़ खोलने के लिए पुकारने लगा। पहले तो उसने मुझे अच्छी तरह संबोधन कर पुकारा और कहा - अजी ! किवाड़ खोल जाइये परन्तु जब अधिक देर तक भी दरवाजा न खुला तो उसने मुझे 'तू किवाड़ खोल जा' कहकर आवाज दी। यह सुन मेरे क्रोध का ठिकाना न रहा। मैं घर से बाहर निकल पड़ी।

मैं उस समय गहने पहने थी इसलिए चोरों ने पकड़कर मुझे अपने नायक भीमभिल्ल को सौंप दिया। उसने मुझे अपनी स्त्री होने के लिए कहा। मैंने उसको यह कह कि 'कुलस्त्रियों का यह काम नहीं है' कहकर उसे रोका कामातुर हो वह जबरदस्ती करने पर उतारू हो गया। उस समय वनदेवता ने मेरी सहायता की और वह भील एवं उसके सेवक सब उसने मार भगाए। देखो ! शील का कितना माहात्म्य है कि देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं और की तो क्या बात? शील के प्रभाव से चक्रवर्ती की संपदा, स्वर्ग की लक्ष्मी और मोक्ष तक के सुख सहज ही में मिल जाते हैं। इसके बाद क्रोध में आकर भील ने मुझे पापी दुष्ट एक बनिये के हाथ बेच दिया। वह मुझे रोज मीठे - मीठे भोजन कराता था और पंद्रह दिन में एक बार मेरी नसोंकी फस्त खुलाकर खून निकलवाया करता था।

जिससे वह कंवल आदि अधिकतर रेशमी वस्त्र रंगा करता था। उसके पास लाक्षामूल तेल था और उसे लगाकर मेरी देह की व्यथा वह दूर कर दिया करता था। इतना सब मैं कष्ट सहती थी, परन्तु डर से, बिना कुछ कहे यही सोचा करती थी कि देखो कर्मों की विचित्र गति। कहाँ तो मैं घर में किसी का 'तू' शब्द भी सह न सकती थी और अब ऐसे दुःख भोग रहीं हूँ। किसी समय मेरे भाई धनदेव को उज्जयनीपति ने पारासुर राजा के पास भेजा।

जिस समय वह लौट रहा था तब उसने मुझे देखा तो वह अपने साथ ले आया और मेरे पिता के पास भेज दिया । कुछ दिनों के बाद मेरे पिता ने मुझे सोमशर्मा के पास भेज दिया ।

एक समय मुनिराज के पास जाकर मैंने कोप न करने का व्रत लिया । उसी समय से महादुःखदायी क्रोध को मैं नहीं करती । तुंकारी की यह कथा सुन जिनदत्त तेल लेकर अपने घर आया और उसके लगाने से मेरी समस्त व्याधि चली गई । उसी समय चौमासे के दिन आ गये इसलिये मुझे वहीं पर रहना पड़ा । जिनदत्त का लड़का जुआरी था । उसके डर से एक दिन रत्नों का भरा घड़ा मेरे समीप जिनदत्त ने गाड़ दिया परन्तु पुत्र को यह बात मालूम हो गई और उसने वहाँ से निकाल कर दूसरी जगह गाड़ दिया । मैं यह सब वृत्तांत देख रहा था ।

जब चातुर्मास पूरा हो गया तो मैने अन्यत्र विहार किया ।सेठ ने जब रत्नों का घड़ा अपनी जगह पर न पाया तो उसको मुझ पर संदेह हुआ । उसने भ्रमवश चारों तरफ अपने सेवक मुझे खोजने के लिये भेज दिये । एक तरफ वह खुद भी इसी चिंता में निकल पड़ा और मुझे हर्षित हो अपने घर ले जाकर बोला - नाथ ! मुझसे कोई शुभ कथा कहिये । मैं उसका अभिप्राय समझ गया था इसलिये बोला कि - नहीं, तुम्हीं कोई कथा कहो, मैं आनंद से सुनूँगा । जिनदत्त उत्तर में कहने लगा बनारस के राजा जितशत्रु के धनदत्त एक वैद्य था । उसकी स्त्री का नाम धनदत्ता था ।

उन दोनों के धनमित्र और धनचंद नाम के दो मूर्ख पुत्र थे । इसलिये जब पिता (धनदत्त) मर गया तो उनकी संपत्ति छीनकर राजा ने दूसरे शास्त्रज्ञ वैद्य को दे दी । अब तो दोनों भाई चंपापुरी में शिवमूर्ति वैद्य के पास पढ़ने गये और जब पढ़ - लिखकर घर लौटने लगे तो उन्हें मार्ग में एक अंधा बाघ मिला । उसे देख धनमित्र ने छोटे भाई से कहा कि - देख, मैं इसे सूजता (आँखों वाला) किये देता हूँ। छोटे भाई ने ऐसा करने के लिये निषेध किया, पर उसने न मानी । जब व्याघ्र की आँखें अच्छी हो गईं तो उसने सबसे पहले

धनमित्र को ही खा डाला। सो ठीक ही है कि कृतघ्न पुरुषों के हजारों उपकार करो परन्तु वे एक भी नहीं मानते। अब तो मैं और भी अच्छी तरह समझ गया कि सेठ का मुझसे अविश्वास हो गया है इसलिये मैंने भी एक कथा कहना प्रारंभ किया।

हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन के वसुकांता रानी से वसुदत्त नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ था, एक समय किसी व्यापारी ने बहुत बढ़िया आम का फल लाकर राजा को भेंट चढ़ाया और उसको सब रोग का नाशक अमृत के तुल्य बतलाया। राजा ने जाकर वह रानी को दिया, रानी ने पुत्र को और पुत्र ने फिर राजा को दे दिया। अब की राजा ने उसे अच्छा होने के कारण बगीचे में बोने के लिये माली को दे दिया। बोने के कुछ दिन बाद उसके पेड़ पर फल लग आये। इसी समय एक गिद्ध साँप को मुँह में लेकर आकाश में जा रहा था कि उसके विष की बूँद उस पेड़ के फल पर पड़ गई। फल विष की गरमी से पीला पड़ गया। माली ने उसे पका समझ राजा को भेंट किया। राजा ने माली को तो धन दे विदा किया और फल लड़के को खाने को दिया। फल खाते ही लड़का मूर्छित हो गिर पड़ा। यह देख राजा ने उस पेड़ को खुदवा कर फेंक दिया। पुत्र की चिकित्सा के लिये जब वैद्य बुलाया तो उसने विषजन्य मूर्छा बतलायी एवं उसी पेड़ के फल खिलाने से वह दूर हो गई। यह देख राजा को बड़ा दुःख हुआ और वह उस विष दूर करने वाले वृक्ष को कटवा कर फेंक देने पर बहुत ही दुःख मानने लगा।

इसलिये हे श्रेणिक ! बिना विचारे न तो कोई बात ही कहना चाहिये और न कोई काम ही करना चाहिये। इसके बाद सेठ ने फिर कहना शुरू किया वह बोला -- गंगा के किनारे विश्वभूत नाम का एक तपस्वी रहता था। एक समय उसने गंगा में बहता हुआ हाथी का एक छोटा बच्चा देख वह उसने निकालकर पाल - पोस कर बड़ा किया। जब वह चढ़ाई हो गया तो राजा दे गया और उसे अंकुश से शिक्षित करने गंगा के तीर पर भाग आया। तपस्वी ने जब मना किया

डाला। कहिये ! मुनि ! यह उसने क्या ठीक किया? इस तरह कथनोपकथन से जब कुबेरदत्त ने अपने पिता का दुष्ट अभिप्राय जाना तो उसने वह रत्नों का घड़ा लाकर उपस्थित कर दिया। अब तो पिता - पुत्र दोनों द्रव्य की निंदा कर कहने लगे - हा ! इस धन को धिक्कार हो जिसके मोह में फँस मुनि भी चोर समझ लिये जाते हैं। इसके बाद वे दोनों दीक्षा ले मुनि हो गये।

हे श्रेणिक ! इस तरह कायगुप्ति न होने के कारण मैं तुम्हारे यहाँ न ठहर वन में चला आया था। इस प्रकार राजा श्रेणिक जैनधर्ममय सम्यग्दृष्टि हो राज्यसुख भोगने लगा। उसके चेलिनी से कुणिक, वारिषेण, शिव, हल्ल, विहल्लक और जितशत्रु, ये छह पुत्र जब उत्पन्न हो चुके और सातवाँ गर्भ में आया, तो रानी को वर्षाकाल में हाथी पर चढ़कर घूमने का दोहला उत्पन्न हुआ। असमय की इच्छा पूर्ण न होती देख राजा को बड़ी भारी चिन्ता हुई। वह रानी की कृशता के साथ स्वयं भी कृश होने लगा।

यह देख अभयकुमार ने विनयपूर्वक उस कृशता का कारण पूछा और श्रेणिक से उसका कारण दोहला की अपूर्णता को जाना तो उसने उन्हें समझाकर कहा कि - चिन्ता मत कीजिए। मैं आपकी इच्छा पूर्ण कर दूँगा। इसके बाद हाथ में तलवार ले अति भयंकर शमशान भूमि में प्रेत देखने के लिए गए।

उस समय आधी रात का समय था, चारों तरफ अंधकार ही अंधकार था और साँप, बाघ, शाकिनी, डाकिनी, राक्षसी आदि से वह शमशान भूमि व्याप्त थी। कुमार अभय ने निर्भयतापूर्वक वहाँ जाकर एक बड (बरी) के वृक्ष पर दीपक जलते हुए देखे और हाथ में माला लेकर जपते हुए पुरुष से पूछा कि - तुम कौन हो, कहाँ से आए हो और क्या जप रहे हो? उत्तर मे उस पुरुष ने कहा कि - भाई ! विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में गगनप्रिय नाम का एक नगर है। वहाँ का राजा मैं वायुवेग हूँ। एक समय मैं चैत्यालयों की वंदना के लिए सुमेरू पर्वत पर गया था। वहाँ विजयार्द्धवासी बालके की पुत्री सुभद्रा मुझे दिख पड़ी। मैं उसे देश आश्चर्य में आ गया और काम से पीड़ित हो मैंने

वह हर ली। सुभद्रा के पिता को जब यह हाल मालूम हुआ, तो वह क्रुद्ध हो मेरे पास आया और समस्त मेरी विद्यायें छीनकर लड़की को अपने घर ले गया। उस समय से मैं भूमिगोचरी हो मंत्र जप रहा हूँ। आज मुझे बारह वर्ष तो बीत गये परन्तु विद्या सिद्ध नहीं हुई।

अब में घर जाना चाहता हूँ। विद्याधर की यह बात सुन अभयकुमार ने उससे वह मंत्र माँग लिया और दृढ़ आसन और ध्यान लगाकर जपने से शीघ्र ही महाविद्या सिद्ध हो गई। उसके प्रभाव से विद्याधर को भी वह विद्या सिद्ध हो गई तो दोनों में परस्पर गाढ़ी मित्रता हो एक - दूसरे को नमस्कार करने लगे। सो ठीक ही है - स्त्री, पुत्र, विद्या, राज्य, यश आदि सब पुण्य के प्रताप से प्राप्त होते हैं। अभयकुमार ने घर आकर विद्या से वर्षा ऋतु बनाई और उसमें रानी को घुमा - फिरा कर उसकी इच्छा पूर्ण की। गर्भ के दिन पूरे हो जाने पर पुत्र पैदा हुआ।

उसका नाम दोहले के अनुसार मेघकुमार रखा गया। इस तरह बुद्धिमान, अर्हन्त भगवान् के भक्त, धीर - गंभीर अभयकुमार एवं पटरानी के सात पुत्रों से युक्त श्रेणिक सब प्रकार के सांसारिक भोग भोगते थे। सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान प्रिय और वृहस्पति के समान बुद्धिमान थे। उनके राजा, मंत्री, मित्र, कोष (खजाना), देश, दुर्ग (किला) और सेना ये राज्य के सातों अंग सुदृढ़ थे। केशर के तिलक से सुशोभित मोतियों के हार से मनोहर नाना तरह के भूषणों से भूषित थे। ये याचकों को तो सुवर्ण का दान देते थे, परन्तु शत्रुओ से भेंट लिया करते थे।

मोक्ष के इच्छुक वे गुणग्राही ही सम्यग्दृष्टि और धर्मकथा सुनने के प्रेमी थे। सज्जनों के हितैषी, दुर्जनों के बैरी उनके दो हजार राजा सेवक थे। इस प्रकार महाविभूति के साथ वे इन्द्र के समान राज्य करते थे। एक समय विपुलाचल पर जगत्पूज्य श्री १००८ भगवान महावीर स्वामी का आगमन हुआ। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने समवशरण की रचना की। उसमें मरकतमणि के पीठ से सुशोभित सिंहासन बनाया गया, पाँच भीति, बीस

हजार पैड़ियाँ और बाहर सभाएँ बनाई गई । मानस्तम्भों से उसे अलंकृत किया गया । कमल सहित तालाब बनाए गए और उनमें हंस, सारस आदि पक्षी मीठे - मीठे शब्द करने लगे । वहाँ गायों और सिंहों के बच्चे साथ - साथ खेलते थे ।

नेवले और साँप मित्र हो गये थे । इस प्रकार जातिगत बैर तक छोड़ सब परस्पर उन भगवान के प्रभाव से हितैषी हो गये थे सूखे तालाब, बावडी पानी से भर गई थीं, वृक्ष हरे हो गये थे और लताओं पर फल - फूल लग आये थे । उस समय छहों ऋतु एक साथ अपना आनन्द दे रही थीं, कोकिल, मयूर आदि बोलने लगे थे । माली ने जब यह अद्भुत बात बगीचे में देखी तो मन में सोचने लगा कि जिस प्रकार हिरणों को चमकती हुई बालू में जल की भ्रांति हो जाती है, उस प्रकार की भ्रांति तो नहीं हो गई है। आगे कुछ दूर चला तो उसे आकाश को गुंजाने वाला दुन्दुभि का शब्द सुनाई पड़ा । आगे और कुछ बढ़ा तो उसे तीस हजार ध्वजाओं से शोभायमान और विमान में बैठे हुए देव - देवांगनाओं के जय - जय शब्दों से शब्दायमान, अपूर्व श्री दीख पड़ी, वनपाल यह देख शीघ्र ही वे ऋतु के फल - फूल लेकर राजा के पास गया और महावीर स्वामी के आगमन के शुभ समाचार जा सुनाये ।

श्रेणिक उसी समय सिंहासन से उठा और परोक्ष विनय करने के लिये सात पैंड चलकर नमस्कार किया । कुबेर के समान उस राजा ने माली को वस्त्र - भूषण प्रदान किये और वंदनार्थ जाने के लिये नगर में डोंढी पिटवा दी । उस समय श्रेणिक ने अपने मदोन्मत्त उन्नत हस्तियों को सुवर्ण की अंवारी आदि से सजवाया, आकाश और भूमि को अपने गमन से एक करने वाले छत्तीस प्रकार के सुन्दर शीघ्रगामी घोड़े जीन आदि से सुसज्जित करवाए। समवशरण पर्यंत समस्त पृथ्वी पर कपड़े बिछवाये । नाना प्रकार के बाजे और जय जयकार शब्दों से आकाश को गुंजाते हुए नगरवासियों के एवं अपने पुत्र को चेलिनी आदि रानियों के एवं चारों प्रकार की सेना के साथ छत्र, चमर आदि राज्यलक्ष्मी के चिन्हों से सुशोभित हो, राजा श्रेणिक महावीर भगवान् की

वंदना के लिये चल पड़े। जिस समय उसे मानस्तंभ दीख पड़ा तो उसने हाथी से उतर कर साष्टांग नमस्कार किया। अपने राज्यचिह्न सब दूर कर दिए एवं 'निःसहि' कहकर समवशरण में प्रवृत्त हुआ।

विशाल कोटों का उल्लंघन कर नाना तरह की शोभा देखते हुए श्रेणिक ने सिंहासन पर विराजमान महावीर भगवान् को देखा। उस समय उसने उनकी तीन प्रदक्षिणा दीं और नमस्कार किया। पूजा और स्तुति करने के बाद वह मनुष्यों के कोठे में जा बैठा। उसने भगवान् से अपने पूर्वभव पूछे और उन्हें सुनकर जब वह चुप हो गया तो नमस्कार कर अभयकुमार ने भी अपने पूर्वभव पूछे और उत्तर में भगवान कहने लगे। एक ब्राह्मण वेद पढ़ने के लिए जा रहा था। उसके साथ में एक श्रावक भी हो लिया। मार्ग में कुछ दूर चलकर एक बड़ (बरी) का पेड़ पड़ा। उसे देख ब्राह्मण ने उसकी तीन प्रदक्षिणा दी और विनयपूर्वक नमस्कार किया। श्रावक ने उसी समय मुस्करा कर उस पेड़ के पत्ते तोड़ लिए और अपने पैर पोंछकर उन्हें जमीन पर फेंक दिया। यह देख ब्राह्मण को बड़ा गुस्सा आया और कहा कि तू नहीं जानता ! देवता की अविनय से कष्ट होता है। श्रावक उत्तर में बोला - अच्छी बात है, यदि यह सच्चा देवता होगा तो अवश्य मेरा नाश कर देगा। ब्राह्मण ने वैश्य से कहा तुम्हारा कौन - सा देव है? वैश्य बोला - यह पूछने से तुम्हारा क्या मतलब? ब्राह्मण ने कहा -मैं भी इसी प्रकार उसका तिरस्कार कर परीक्षा करूँगा। इतने में कुछ दूर चलकर एक कपिकच्छ (खुजली करने वाले) का पेड़ पड़ा। श्रावक ने उसे ही अपना देव बतला दिया।

ब्राह्मण ने हँसकर उसके पत्ते तोड़ लिए और अपने शरीर में मल कर चलने लगा। ब्राह्मण कुछ ही आगे चला होगा कि उसे खुजली मचने लगी, यहाँ तक कि वह धरती पर लुढ़कने लगा। अब वह श्रावक से बोला कि - सचमुच तुम्हारा देव तो साँचा है। इस प्रकार श्रावक ने उस ब्राह्मण की देवमूढ़ता दूर कर दी। इसके बाद आगे चलकर गंगा पड़ी। ब्राह्मण भागीरथी हरि आदि भक्ति के वचन कहता हुआ उसमें नहाने लगा। यह देख श्रावक ने

ब्राह्मण से पूछा - भाई ! इस तीर्थ का क्या माहात्म्य है? ब्राह्मण ने उत्तर दिया - यह मुझ सरीखे पापियों को तार कर पंचहत्याओं को नाश करने वाले वैकुण्ठ को देती है। यह सुन श्रावक उसके किनारे भोजन करने बैठ गया। जब खा चुका तो जूठन गंगा के जल से भिगोकर ब्राह्मण को दे दी यह देख ब्राह्मण क्रुद्ध हो बोला - अरे ! मेरा भोजन खराब कर दिया।

श्रावक ने कहा - जल्दी - जल्दी खा क्यों नहीं लेते? ब्राह्मण ने उत्तर दिया - बता तो, तुझ पापी शूद्र के स्पर्श किए गए जूठे भोजन को मैं कैसे खा लूँ? श्रावके ने कहा - अरे भाई ! जो तुझे पवित्र कर सकती है, ऐसी गंगा अपने जल से धान्य के बने भोजन को पवित्र नहीं कर सकती? इस प्रकार नाना हेतु प्रहेतुओं से समझाने पर ब्राह्मण को यथार्थ ज्ञान को गया। उसने श्रावक को अपना गुरु समझा और उससे जैनत्व सीखा। वहाँ से आगे चलते - चलते वे दोनों एक क्रूर जन्तूओं से भरे वन में जा निकले और रास्ता भूल गये। उस जगह श्रावक के साथ ब्राह्मण ने संन्यास ले प्राण छोड़े एवं वह (ब्राह्मण) पहिले स्वर्ग में देव उत्पन्न हुआ।

वहाँ से चलकर तू श्रेणिक के अभयकुमार नाम का पुत्र हुआ है और तप कर इसी भव से मोक्ष जाएगा। इसके बाद श्रेणिक ने हाथ जोड़ महावीर स्वामी को नमस्कार किया और "हे संसार के पालक ! हे गुणों के समुद्र ! हे जगत् के स्वामी ! हे सुर - असुरों द्वारा पूजित चरण ! हे कल्याण के देने वाले ! हे ज्ञानमय ! हे अज्ञानांधकार के नाशक ! हे मोह के जीतने वाले ! हे काम को जलाने वाले ! हे जिनेंद्र ! मैं आपसे पाप के नाशक विमलनाथ भगवान के चरित्र को सुनना चाहता हूँ। हे सर्वज्ञ ! उस समय धर्मात्मा धर्म नामक बलभद्र, स्वयंभू नामक नारायण और मधु नामक प्रतिनारायण हुए। परंतु उनका बल आदि कैसा था यह नहीं मालूम।

कृपाकर उसे भी कहिए। संजयत मुनि का तप, उन पर उपसर्ग, केवलज्ञान का कारण, उनके गण में ही उत्पन्न अन्य दो मुनियों का चरित्र आदि सब कहिए, क्योंकि दानी, ध्यानी मुनियों के, शूरवीर चक्री - प्रतिचक्रियों

के और चरमशरीरी कामदेवों के चरित्र सुनने से कल्याण की प्राप्ति होती है। अतएव रागद्वेष से पराङ्मुख भव्य जीव उन्हें ही सुनना चाहते हैं।" इस प्रकार विनय कर क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक अपने पुत्र और रानी चेलिनी के साथ चुप हो, अपनी जगह बैठ गये।

सर्गांत मंगल

सकलपुरुषपूजित, देवता ध्यान ध्यावैं, सकल दुःखहर्ता पापपंक्ती जलावैं।
सुवर्ण वर्णधारी, सूर्यभा भी लजावैं, सनमति जिन ईश्वर ध्यान उनका लगावैं।।

दूसरा सर्ग

जयवंतो जिनवर सदा, मोहहरण जगवीर ।
शिव सुखदाता सर्व हित, ज्ञानसुधाधर धीर ।।

अथानंतर वीर भगवान अपनी समुद्र के समान गर्जने वाली, सात नयों से सुशोभित, दर्शन - ज्ञान से युक्त, संसार की नाशक दिव्य ध्वनि से उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा -

हे श्रेणिक ! तुमने जो प्रश्न किया है, वह बहुत ही उत्तम है। इसके सुनने से भव्य जीव सम्यक्चारित्र धारण कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। चंद्रमा को जिस प्रकार चकोर गाढ दृष्टि लगाकर देखता है, उसी प्रकार तुम भी विमलनाथ भगवान् के चरित्र को मन लगाकर सुनो -

कुण्डलाकार, कालसमुद्र से वेष्टित,अनेक पद्म वैडूर्य मणियों की खानों से सुशोभित चार लाख योजन विस्तृत एक धातकी खण्ड नामक द्वीप है। उसकी पश्चिम दिशा में चौरासी हजार योजन ऊँचा एक मेरु पर्वत है। वह अपनी शोभा से आकाश को लजाने का इच्छुक वा पृथ्वी का स्तनसरीखा मालूम पड़ता है अथवा मानो निराधार आकाश को ऊँचा उठाकर रखने वाला सुवर्ण का खंभा है। उस पर नंदन आदि चारों वन हैं, देवांगनाएँ क्रीड़ा किया करती हैं और अर्हंत भगवान के अनेक मंदिरों से सुशोभित है। उस मेरु पर्वत की पश्चिम दिशा में नदी के दक्षिण तट पर महापद्म नाम का एक देश है, उसके तृतीय खण्ड में मनोहर रम्यकावती देश है। उस देश में बड़े - बड़े परकोटेदार

नगर हैं, विद्वान् लोगों का वास है और सुवर्ण के भवन हैं। वहाँ एक महापुर नाम के नगर में पद्मसेन नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम पद्मा था। उनके नाना तरह के भोग भोगते हुए कालक्रम से एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम पद्मनाभ रखा। एक दिन प्रीतिंकर नामक उद्यान में समस्त जीवों की रक्षा में तत्पर सर्वगुप्त केवली पधारे। उनके प्रभाव से सब ऋतुओं के फल - फूल वृक्षों पर आ गये। यह देख वनमाली को बड़ा आश्चर्य हुआ और जब इसका कारण ढूँढने लगा तो उसे पल्यंकासन से विराजमान सौम्यमूर्ति के धारक, शुक्ल ध्यान में मग्न, मृग व्याघ्रादि जन्तुओं से वेष्टित, चंद्रमा के समान शांत, सूर्य के समान दैदीप्यमान, तप के समुद्र केवली दीख पड़े। वह हर्षित हो यह समाचार देने के लिए राजा के पास गया और फल - फूल भेंट कर केवली भगवान के पधारने के समाचार कहे।

राजा पद्मसेन पुत्र तथा सामंतों सहित भक्ति के साथ उन केवली मुनिराज की वंदना के लिए गया और वहाँ अष्ट - द्रव्यों से उनकी पूजा वंदना कर बैठ गया। केवली मुनिराज उसे भव्य कोमल परिणामी समझ धर्म का उपदेश देने लगे। उन्होंने कहा - राजन ! यह जीव अनादि निधन इस दुःखमय संसार में भ्रमण करता रहता है। इसको पहिले तो मनुष्य पर्याय मिलना कठिन है, वह भी किसी तरह मिल जाए तो श्रेष्ठ कुल में पैदा होना कठिन है और ये दोनों बातें मिल जाएँ, तो दयाप्रधान धर्म की प्राप्ति होना अति कठिन है। देखो ! इस धर्म के प्रभाव से राज्य, स्वर्ग, यश, सुख, वीर्य, सुपुत्र, धन, सुन्दर स्त्री, विद्वत्ता, चक्रवर्तिपना, श्रेष्ठता,सुन्दरता और तीर्थंकर पदवी तक प्राप्त हो जाती है और जो धर्म से रहित होते हैं, उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, पुत्र पैदा नहीं होते, गूंगे हो जाते हैं, स्त्री नहीं मिलती, वे बदसूरत, चोर, नीच, नौकर, भार ढोने वाले और जन्मपर्यन्त पीड़ित रहते हैं। वह धर्म श्रावक और मुनि के भेद से दो प्रकार का है, जिसमें मुनि धर्म से तो [illegible] है और श्रावक धर्म के पालने से स्वर्गादि सम्पत्ति साक्षात् मोक्ष की प्राप्ति होती [illegible] दोष लगता है इसलिए मिलती है। रात्रि में भोजन करने से माँस भक्षण का

अंहिसा व्रत खण्डित हो जाता है अतः उसको कभी न करना चाहिए।

जो रात्रि में खाते हैं, उनके पूजा, स्नान, दान, जप, तप और तर्पण सब व्यर्थ जाते हैं, जबकि पक्षी तक रात को नहीं खाते तो मनुष्यों को खाना ही नहीं चाहिए। दिन अस्त होने से जब दो घड़ी बाकी रहती हैं, उससे पहिले ही मनुष्य को भोजन कर लेना चाहिए और जो इसके बाद भोजन करते हैं वे माँस खाने वाले राक्षस के समान हैं। जो मनुष्य तीन संध्याओं में भोजन करने वाले हैं, वे निर्धन, रोगी, अल्पायु और हीन बल होते हैं। पाप करने वालों की भी निन्दा नहीं करनी चाहिए, कारण, उससे भी पाप बंध होता है। 1. निन्दा करने वाला, 2. व्रत भंग करने वाला, 3. दूसरे के दोषों को ढूँढने वाला, 4. निद्रा से जगा देने वाला और 5. अन्तराय डाल देने वाला। इस प्रकार पाँच तरह के चाण्डाली होते हैं। धर्मस्थान में जो पुरुष या स्त्री राग - द्वेष के वशीभूत हो, किसी की निन्दा करते हैं, वे वल्गुली, उल्लु, बिल्ली आदि नीच पर्याय पाते हैं। असार इस संसार में स्वार्थ ही सबको प्यारा है, स्त्री पुत्रादिक नहीं, इसलिए जिससे स्वार्थ सिद्ध होता है उसी से लोग प्रेम करने लगते हैं। यह अकेला ही तो सुख - दुःख भोगता है और अकेला ही स्वर्ग - नरक में जाता है। पुण्य - पाप में स्त्री - पुत्र आदि किसी का भी विभाग नहीं है। नरक में जाकर पाँच प्रकार के दुःखों को यह जीव अकेला ही भोगता है। एक क्षण के लिए भी वहाँ उसे कोई सुखी नहीं कर सकता।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की भावना के बिना किया हुआ समस्त तप विफल हो जाता है। जिस प्रकार अग्नि से वन जल जाता है, उसी प्रकार जन्म भर अति कठिन किया हुआ तप भी क्रोध से भस्म हो जाता है। इस जीव ने अनंत बार राजसुख भोगा है, तो भी संतोष नहीं होता। यह इन्द्रिय भोग सर्प के समान कष्टकर और भयंकर है। इनके वशीभूत हो स्त्री, धन आदि में मोह करने वाले जीव तिर्यंच गति में पैदा होते हैं। जो लोग अनेक दिनों तक नाना तरह के इन्द्रिय-भोग भोगकर भी अंत में विरक्त हो धर्माचरण नहीं करते, वे मूर्ख हैं। इस संसार में मृत्यु सबकी होती

है। देखो ! काल आ जाने पर न चक्रवर्ती ही जीवित रहे और न देवता ही बच सके। इसलिए धर्म का अवश्य आचरण करो।

राजन् !

आगामी दो जन्मों के बाद तुम निर्मल ज्ञान के धारक विमलनाथ तीर्थंकर होओगे। केवली भगवान का इस प्रकार उपदेश सुनकर पद्मसेन को तीर्थंकर हो जाने के समान ही आनन्द हुआ। उसने बन्धुओं को तो बंधन के तुल्य समझा, स्त्रियों को नरक की गली समझा, सबसे प्रधान अपने हित का लक्ष्य कर उसने पद्मनाभ पुत्र को तो राज्य दिया और स्वयं दीक्षित हो, ग्यारह अंगों को विशेष अर्थसहित पढ़ने लगा। मुनि पद्मसेन अनेक तरह के तप करते पृथ्वी पर विहार करने लगे। उन्होंने तीर्थंकर प्रकृति के बंध की कारण दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावना भायीं। आठ अंग सहित, तीन मूढ़ता और आठ मद रहित जो सम्यग्दर्शन की विशुद्धता है, उसे दर्शन विशुद्धि कहते हैं, ।।1 ।। देवशास्त्र गुरु की जो प्रत्यक्ष - परोक्ष विनय करता है, उसका नाम विनय - सम्पन्नता है। ।।2।। अठारह हजार भेदों से भिन्न शीलव्रत में जो मन - वचन - काय किसी भी प्रकार से अतीचार नहीं लगने देता है, वह शीलव्रतेष्वनतीचार भावना है ।।3 ।। आत्मा को नित्य समझ सदा जो श्रुत का पाठ करता रहता है, उसके अभीक्ष्णज्ञानोपयोग चौथी भावना होती है। ।। 4 ।। स्त्री, पुत्र,धन - धान्यादिक में अनित्यता समझ ममत्व न करना संवेग है ।।5।। अपनी शक्ति के अनुसार जो महापुरुष सद्बुद्धि से दान देता है, उसके शक्तिस्त्याग छठी भावना होती है ।।6।। जिसके आचरण करने से मन बाह्य प्रवृत्ति को छोड़ आत्मस्वरूप के चिन्तवन में लीन होता है, वही उत्तम तप है और उसकी शक्ति न छिपाकर आचरण करना शक्तितस्तप है ।।7।। साधुओं के धर्मध्यान में विघ्न न आने देने का प्रयत्न करना साधुसमाधि है ।।8।। दश प्रकार के साधुओं की सेवा वैय्यावृत्य है ।।9।। अनन्त गुणों के भण्डार, सर्वज्ञाता अर्हंत भगवान की नाना स्तोत्रों से भक्ति करना अर्हद् भक्ति है ।।10 ।। छत्तीस गुण सहित तपस्वी, ध्यानी, आचार्य की भक्ति करना

आचार्य भक्ति है ।। 11 ।। अनेक शास्त्रों के ज्ञाता अंगपाठी मुनियों की भक्ति बहुश्रुत भक्ति है ।।12 ।। सिद्धान्त के शास्त्रों के वाक्यों को सर्वथा सत्य मानकर जो ज्ञानी पूजा करता है, असमय में उन्हें पढ़ता नहीं है और उनमें विश्वास रखता है, उसके प्रवचन भक्ति होती है। ।।13 ।। छह आवश्यकों की विधि का उल्लंघन न कर उन्हें समयानुसार करना आवश्यकापरिहाणी है ।।14 ।। जैन धर्म की प्रभावना संसार में करोड़ों उपायों से जो करता है, वह मार्ग प्रभावना है ।।15 ।। व्रती, ब्रह्मचारी, तपस्वी, दानी आदि सहधर्मी भाइयों के साथ जो उत्कृष्ट प्रेम करता है, वह वात्सल्य है ।।१६।। तपस्वी पद्मसेन ने इस प्रकार सौलह श्रेष्ठ भावनाओं को रितिचार भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया।

वे एक मास, दो मास, चार मास के एक साथ उपवास करने लगे। हेमन्त ऋतु में वे तालाब या नदी के किनारे तप करते थे, गर्मी में पर्वत पर सूर्य की तरफ मुँह कर ध्यान लगाते थे, वे राग - द्वेष से रहित थे, निद्रा आलस्य के त्यागी थे, मौनी थे, शुद्ध आत्मा के ध्यान में लीन थे और मेरु के समान स्थिर थे। उनकी शांत मुद्रा देखकर परस्पर विरोधी भी जंगल के व्याघ्र, सर्प आदि जन्तु शांत हो, सेवा करने लगते थे, उनके कानों में छोटे - छोटे पक्षियों ने घोंसले बना लिये थे। केशों से सारा शरीर ढक गया था। जिन महात्माओं ने स्त्री - पुत्र आदि से विरक्त हो, राग - द्वेष को छोड़ वन में जा तप धारण कर लिया, वे ही धन्य हैं।

इस प्रकार मुनि पद्मसेन अति दुर्धर तप तपकर उच्चगोत्र, शुभ आयु और साता वेदनीय कर्म के प्रताप से आयु के अन्त में सहस्रार नामक बारहवें स्वर्ग में उत्पन्न हुए। वहाँ उनका शरीर अन्तर्मुहूर्त मात्र में यौवन से भूषित हो गया। उस देव को सम्मुट शिला से उठा हुआ देखकर नियोगिनी देवांगनाएँ आईं और हे स्वामिन् ! तुमने ऐसा कौन - सा पुण्य का काम किया जिससे तुम यहाँ आकर उत्पन्न हुए, क्या तुमने जिनेंद्र भगवान् के चरणों की पूजा की थी? क्या चिरकाल तक षट् काय के जीवों की रक्षा करने

वाला तप तपा था? क्या चार तरह के पात्रों के लिए दान दिया था? अथवा क्या तेरह तरह का चारित्र पाला था? इस प्रकार नाना तरह से स्तुति करने लगीं। देवांगनाओं से वेष्टित अपने को देखकर वह देव विचारने लगा - यह मोतियों की मालाओं से सुशोभित, मणियों से खचित, बारीक कारीगरों से युक्त विमान क्या है? नाना ऋद्धियों से युक्त यह कौन सा स्थान है? और यह सुन्दर स्त्रियाँ भी कौन हैं? और मैं भी कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ? इस प्रकार संशय उठने पर उसके अवधि ज्ञान प्रगट हुआ और उसके प्रभाव से सब जानकर निर्भय हो आनंदित हुआ। इसके बाद देवांगनाओं ने उसका श्रृंगार करना प्रारम्भ किया। कोई तो मुकुट पहिनाने लगीं, किसी ने वस्त्र पहनाये, किसी ने बाजूबंद बाँधा, किसी ने गले में हार डाला, किसी ने चंदन का लेप किया, किसी ने मस्तक पर तिलक लगाया, किसी ने कमर में करधनी पहनायी।

किसी देवांगना ने उसे दर्पण दिखलाया और किसी ने चँमर ढोरे। इस प्रकार स्वर्ग की सम्पत्ति देखकर उस पद्मसेन के जीव ने मन में विचारा कि यह सब मेरे धर्माचरण का ही फल है। इस प्रकार अपने मन में सोचकर वह मेरू तथा नंदीश्वरादि की वंदना के लिए गया। वह देव कभी तो असंख्य द्वीप समुद्रों की शैर करता, कभी सुरांगनाओं के साथ पर्वतों पर क्रीड़ा करता, और कभी देवागंनाओं के साथ नाना तरह के भोग भोगता। उस देव की आयु अठारह सागर थी, एक धनुष ऊँचा शरीर था, द्रव्यशुक्ल लेश्या थी तथा भाव उत्कृष्ट पद्मलेश्या एवं जघन्य शुक्ल लेश्या थी। उसकी काम वेदना देवांगनाओं के केवल रूप देखने मात्र से मिट जाती थी, नीचे चौथे नरक तक और ऊपर अपने विमान के ध्वज दण्ड तक अवधि ज्ञान से देख सकता था।

यहीं तक उसके विक्रिया थी, अणिमा - महिमा आदि ऋद्धियों का धारक था, अठारह हजार वर्ष बाद मन से आहार लेता था, नौ महीने बीतने पर एक बार श्वांस लेता था, उसका शरीर सात धातु से रहित परम सुन्दर था और गीत, नृत्य आदि आमोद - प्रमोद की सामग्री में अनुरक्त रहता था। इस प्रकार वह देव नाना तरह के भोगों से रमणीक स्वर्ग लक्ष्मी को

भोगता था, सो ठीक ही है, धर्म से किस चीज की प्राप्ति नहीं होती है। धर्म के प्रभाव से मनोहर स्त्री, आज्ञाकारी पुत्र, बड़ा भारी राज्य, यश, कौशल, गांभीर्य, स्वर्ग के सुख, इन्द्रपना, बुद्धिमत्ता, वक्तृत्व, चक्रवर्तिपना और कहाँ तक कहें, तीर्थंकरपना तक मिल जाता है, तब भला क्या - क्या गुण प्राप्त नहीं हो सकते?

दूसरा सर्ग समाप्त हुआ ।।2।।

तीसरा सर्ग

काश्यप गोत्र प्रधान जे, गोरिक वर्ण समान ।
पूजौं उन विमलेश के, पाद पद्म धरि ध्यान ।।

अथानंतर इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में मेरु की दक्षिण दिशा में कंपिला नाम की एक नगरी है। वहाँ का राजा इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा था और उसकी महारानी परम सुन्दरी गुणवती जयश्यामा नामक थी और वे दोनों यथेष्ट भोग भोगते थे।

एक दिन इन्द्र ने कुबेर को बुलाकर कहा कि तेरहवें तीर्थंकर श्रीविमलनाथ भगवान कंपिला में आज से छह मास बाद उत्पन्न होंगे। अतएव तुमकों उस नगरी की शोभा एवं राजा के घर में रत्नों की वर्षा अभी से प्रारम्भ कर देना चाहिए। कुबेर ने इन्द्र की आज्ञानुसार भगवान के गर्भ में आने से छह मास पहले ही रत्नों की वर्षा प्रारम्भ कर दी।

एक दिन महारानी जयश्यामा कोमल सेज पर सो रही थी, कि रात्रि के अन्तिम प्रहर में सोलह स्वप्न दिखाई दिये। सबसे पहले उसने पूर्ण चन्द्रमा के समान शुभ्र, कैलाश के समान उन्नत, मद से सुगंधित गंडस्थल वाले हाथी को देखा। दूसरे मोटी ककुंद, और छोटी ग्रीवा वाले, चपल, छोटे सींग के धारक श्वेत काय बैल को देख प्रसन्न हुई। तीसरे स्वप्न में निर्भय बलवान सुन्दर सिंह को, चौथे में हाथ में कमल लिये कमलों पर विराजमान लक्ष्मी को, पाँचवे में कुन्द मदार आदि पुष्पों से गुंथी हुई दो मालाओं को, छठे में अधंकार के नाशक शीतल सौम्य निष्कलंक चन्द्रमा को, सातवें में तेजस्वी

लाल उगते हुए सूर्य को, आठवे में जल में किलोल करती दो मछलियों को नववें में कमलों से आच्छादित जल के भरे दो घड़ों को, दशवें में फूले हुए कमलों से सुशोभित जल से पूर्ण विशाल तालाब को, ग्यारहवें में हिलोरें लेते हुए शब्दायमान समुद्र को, बारहवें में रत्नों से मिश्रित सोने के बने हुए सिंहासन को, तेरहवें में घंटियों के शब्दों से मनोहर आकाशगामी विमान को, चौदहवें में महा दैदीप्यमान नागकुमारों से युक्त नागलोक को, पन्द्रहवें में प्रकाशमान रत्नों के ढेर को और सोलहवें स्वप्न में बिना धुएँ के जलती हुई अग्नि को देखा। इसके बाद उस महारानी ने उन्नतकाय एक सुन्दर गज को अपने मुख में प्रवेश करते मालूम किया।

प्रातः काल हो जाने से महारानी जाग गई, सेज से उठकर स्नान कर उसने सामायिक की और बन्दीगणों द्वारा शुभ के सूचक बजाये गए बाजों को सुनकर प्रसन्न होती हुई वह महाराज के पास स्वप्नों का फल पूछने के लिए सभा में गई। महारानी को आते देख महाराज ने प्रसन्नता की और अपनी बायीं तरफ उसे आदर से बैठा लिया।

पति के सत्कार से हर्षायमान उस रानी ने देखे हुए सब स्वप्न कह सुनाये। उत्तर में महाराज ने कहा - पहले स्वप्न में तुमने जो श्वेत हाथी देखा है, उसका फल यह है कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा, बैल देखने से वह समस्त कुटुम्ब को आनन्द देने वाला और सर्व भार वहन करने में चतुर होगा, सिंह देखने से तीन लोक को जीतने वाला पराक्रमी, लक्ष्मी देखने से त्रैलोक्य की लक्ष्मी का भोक्ता, माला से कोमल परिणामी शुक्ललेश्या का धारक, चन्द्रमा देखने से शांत परम विद्वान,

सूर्य देखने से अपने प्रताप से समस्त संसार को व्याप्त करने वाला, महापराक्रमी, मछली देखने से विशाल राज्य का भोक्ता, दो घड़े देखने से मेरु पर स्नान करने वाला, तालाब देखने से समस्त शुभ लक्षणों से शोभायमान, समुद्र देखने से धीर - गंभीर, सिंहासन देखने से समस्त मनुष्यों से पूजित, विमान देखने से स्वर्गलोक से अवतीर्ण, नागभवन देखने से नागदेवों से पूजित,

रत्नराशि देखने से कोटि सूर्य से भी अधिक प्रभाव वाला और निर्धूम अग्नि देखने से कर्मकाष्ठ को जलाकर शुद्ध चिन्मय दशा को प्राप्त करने वाला होगा। इस प्रकार महाराज के मुँह से स्वप्न फल सुनकर महारानी को परम आनन्द हुआ और वह हर्षित हो महलों में चली गई। अथानन्तर ज्येष्ठकृष्णा दशमी के दिन, जबकि उत्तरा भाद्रपद नाम का शुभ नक्षत्र था, वह पद्मसेन का जीव सहस्रार स्वर्ग से चयकर रानी जयश्यामा के गर्भ में आया।

उस समय देवों के आसन कम्पायमान हुए, उन्होंने अपने अवधिज्ञान से भगवान का गर्भ - कल्याणक जाना तो वे आनंदित, हो कंपिला आए और उत्सव मनाकर चले गए। महारानी की सेवा के लिए छप्पन कुमारिकायें इन्द्र ने नियुक्त कर दीं और वे जगत को आनन्द करने वाले जिनेन्द्र भगवान की माता की सेवा करने लगीं। उनमें से किसी ने तो कपड़े व गहने पहिनाये, किसी ने सुगन्धित उबटनादि लगाकर स्नानादि कराया, कोई पैर दाबने लगीं, किसी ने झूले पर बिठाकर झोटे दिये, किसी ने नाना तरह के व्यंजन बनाकर खिलाए, कोई हावभाव से मनोहर गीत गाने व नृत्य करने लगीं, कोई विशाल दर्पण दिखलाने लगीं और कोई इस प्रकार गूढ़ प्रश्न पूछने लगीं - माता !

इस संसार में क्या ग्रहण करने लायक है? माता ने कहा - गुरुओं के वचन। प्रश्न - गुरु कौन हैं? उत्तर - समस्त जीवों के रक्षक, हितमित बोलने वाले तत्त्वज्ञानी। प्रश्न - क्या करने लायक है? उत्तर - संसार का नाश। प्रश्न - मोक्षरूपी वृक्ष का बीज क्या है? उत्तर - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र। प्रश्न - हितकर क्या है? उत्तर - स्वर्ग मोक्ष देने वाला धर्म। प्रश्न - पवित्र कौन है? उत्तर - जिसका मन पवित्र है। प्रश्न - पंडित कौन है? उत्तर - जो हिताहित का विवेकी है। प्रश्न - विष क्या है? उत्तर - गुरुओं का अनादर। प्रश्न - सार क्या है? उत्तर - श्रेष्ठ कुल। मदिरा क्या है? स्नेह। शत्रु कौन है? इन्द्रिय भोग। निन्दनीय क्या है? याचना। विष की बेल कौन है? तृष्णा। भयंकर क्या है? मौत। अन्धा कौन है? रागी। गहन क्या है? स्त्री का

चरित्र । शूरवीर कौन है? स्त्रियों का त्यागी और क्रोध रहित दाता ।गौरव किसमें है? नहीं माँगने में । दरिद्रता क्या है? महालोभीपना । जीवित कौन है? महायशस्वी । जागता कौन है? जो आत्मध्यानी है। सोता कौन है? जो मूर्ख है। कमलपत्र के जल समान विनाशीक क्या है? यौवन और धन । चन्द्रमा के समान सबका प्यारा कौन है? निन्दा से रहित सज्जन । नरक क्या है? पराधीनता । सुख किसमें है? परिग्रहों के त्याग में । भूषण क्या है? ब्रह्मचर्य और सत्यवादिता । मित्र कौन है? जो हित का उपदेश दे ।

बिना कान के कौन है? जो शास्त्रों को नहीं सुनता । मरण क्या है? जन्मभर दुःख देने वाली मूर्खता । किसका ध्यान करना चाहिए? संसार के कल्याण करने वाले, शुद्ध आत्मस्वरूप श्रीवृषभदेव का । प्रधान क्या है? अभयदान और यथाशक्ति तप करना । इस प्रकार हजारों प्रश्नों के यथोचित उत्तर पाकर कुमारिकायें प्रसन्नता के साथ जिनमाता की सेवा करने लगीं । गर्भ में संतान आ जाने से स्त्रियों के उदर की वृद्धि क्रमशः होने लगती है, परन्तु माता के यह बात न हुई। तीर्थंकर पुत्र के पुण्य प्रभाव से पेट की तीन बलियों का भी भंग न हुआ और न उसको थकावट ही मालूम होती थी ।

माता को भोजन पान भी रुचिकर लगता था, चलने - फिरने में भी किसी प्रकार की तकलीफ न होती थी और रात को नींद भी अच्छी तरह आती थी । इस प्रकार जब गर्भ के दिन पूर्ण हो गये तो माघ सुदी चतुर्थी के दिन उस महारानी जयश्यामा ने मतिश्रुत अवधि तीन ज्ञान के धारक, तेज के पुंज सुलक्षण परम पुण्यवान पुत्र को जन्म दिया । बस ! उनके जन्म लेते ही स्वर्ग में घंटे बजने लगे, ज्योतिषियों के विमानों में सिंहनाद होने गला, व्यंतरों के यहाँ भेरी का शब्द सुनाई पड़ने लगा और भवनवासियों के घर में शंख बिना बजाये बजने लगे । अवधिज्ञान से देवों ने जब भगवान विमलनाथ का जन्म जाना तो वे सब अभिषेक करने के लिये उत्सुक हुए । इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने एक लाख योजन का सौ सूंड वाला ऐरावत हाथी बनाया । प्रत्येक सूंड पर आठ दाँत थे, प्रत्येक दाँत पर एक तालाब था, प्रति सरोवर में पच्चीस

कमलिनी (कमल की बेलें) थीं, प्रति कमलिनी पर एक सौ पच्चीस पच्चीस कमल थे, प्रति कमल की एक सौ आठ पंखुड़ीं थीं और प्रत्येक पंखुड़ी पर एक - एक देवांगना नृत्य करती थी। इस प्रकार कुल **(1×100×8×25×125×108)** देवांगनाएँ नाच रहीं थीं। उस हाथी के कुक्षि भाग पर तेंतीस सभाएँ बनाई गयी थीं और वहाँ करोड़ देवों को रखा गया था।

इस प्रकार अद्‌भुत शोभा के धारक उस ऐरावत पर सौधर्म स्वर्ग का इन्द्र अपनी इन्द्राणी सहित बैठा और स्वर्ग से श्री जिनेन्द्र भगवान का जन्माभिषेकोत्सव मनाने के लिए चल दिया। जब नगर समीप आ गया तो इन्द्र ने हाथी को तो आकाश में ही रखा और इन्द्राणी को बालक भगवान को लाने के लिये भेज दिया। इन्द्राणी ने प्रसूति गृह में जा माता को माया से सुला दिया और स्वयं नमस्कार कर भगवान को इन्द्र के पास ले आई। इन्द्र ने उन तेजस्वी बालक को भक्ति भाव से नमस्कार किया और सुमेरु पर अभिषेक करने के लिए चल पड़ा।

वहाँ पाण्डुक वन में अर्धचन्द्राकार सौ योजन लम्बी, पचास यौजन चौड़ी, आठ योजन मोटी पाण्डुकशिला और उस पर तीन सिंहासन हैं। सौधमेन्द्र ने वहीं पर पूर्व दिशा की तरफ मुख कर श्री जिनेन्द्र को विराजमान किया। देवगण आठ योजन गहरे एक हजार सुवर्णमयी रत्नजड़ित (घड़ों) को हाथों में ले क्षीर समुद्र से जल लाने लगे। उस समय इन्द्र ने अपनी हजार बाँह बना लीं और उनसे कलश ढार ढारकर भगवान का अभिषेक करने लगा। उस समय देवगणों की जयध्वनि, वादित्रों के अगाध शब्द और जल का प्रवाह अपार शोभा दिखला रहे थे। इन्द्र के अभिषेक कर चुकने के बाद बचे हुए आठ कलशों से अन्य देवों ने भगवान् का अभिषेक किया (यह बात विचारणीय एवं अन्वेषणीय है।) और उसके बाद इन्द्राणी ने उनको भूषणादि से सुसज्जित किया। उनके कानों में कुण्डल पहनाये, कमर में करधनी, सिर पर मुकुट, बाहुओं में बाजूबंद और शरीर पर उत्तम स्वर्गीय वस्त्र पहनाये। इन्द्र ने इनका नाम विमलवाहन रखा और भक्तिपूर्वक स्तुति

कर बोला - आप तीन लोक के स्वामी, महाज्ञानी, गुणों के समुद्र, धर्ममूर्ति, शत्रुओं के जीतने वाले, मोक्षकल्याणक के दाता, ज्योति स्वरूप, सदानन्दात्मा, अनादिनिधन, मुक्ति स्त्री के पति, अज्ञान के नाशक, योगियों को भी अचिंत्य, नाशरहित और सब प्रकार के भय से रहित हैं।

आप स्याद्वाद के उपदेशक, समस्त जीवों के वन्दनीय, जन्म से ही तीन ज्ञान के धारक दानी - ध्यानी हैं और भव्य जीवों की संसार पीड़ा मिटाने के लिये परम औषधि स्वरूप हैं। यदि समस्त आकाश को कागज बनावे, सुमेरु की लेखनी, समुद्रों के जलों को स्याही और लिखने वाले असंख्य बृहस्पति तक हों तो भी आपके गुण लिखे नहीं जा सकते। इसके बाद उन भगवान को ऐरावत पर चढ़ाकर वह कंपिला नगर आया और वहाँ देव - देवांगनाओं की जयध्वनि के साथ भगवान् को माता - पिता के लिए सौंप दिया। नगर में बड़ी भक्ति के साथ इन्द्र ने आनंदोत्सव मनाया, कुण्डलाकार पंक्ति बाँधकर अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, यहाँ तक कि स्वयं इन्द्र - इन्द्राणी भी भक्ति भाव से प्रेरित हो लय - ताल के साथ नृत्य करने लगे।

माता - पिता को स्वर्गीय वस्त्रभूषणों से सत्कृत कर उनकी प्रशंसा करते हुए इन्द्र ने योग्य वय के देवों को भगवान की सेवा में छोड़ा और स्वयं समस्त मंडली के साथ स्वर्ग को चला आया। इसके बाद राजा ने भी अपने नगर में पुत्र जन्म की खुशी मनाई, समस्त नगर ध्वजाओं से सजाया, याचकों को मुँहमाँगा दान दिया और तीर्थंकर पुत्र होने से अपने जन्म को धन्य माना। जिनेन्द्र विमलवाहन दोज के चन्द्रमा की तरह दिन - दिन बिना किसी प्रकार की विघ्न - बाधा के हर्ष के साथ बढ़ने लगे।

उनके उसी प्रकार की उम्र और शरीर बना - बनाकर देवगण क्रीड़ा करने लगे। वासुपूज्य भगवान् का तीर्थ तीस सागर तक चला, इसके बाद एक पल्य तक धर्म की विच्छित्ति रही, और उसके बाद ये विमलनाथ स्वामी हुए। इनकी आयु साठ हजार वर्ष की थी, साठ धनुष ऊँचा शरीर था, तपाये सोने की सी उनकी कान्ति थी, जब पन्द्रह वर्ष उनके कुमार काल के बीत गए

तो इनका राज्याभिषेक हुआ और समस्त संसार को वश में कर लिया। इनके सरस्वती तो साथ ही उत्पन्न हुई थी, लक्ष्मी जन्म लेते ही आ गई, और प्रताप, धीर, वीरता आदि गुण आकर सेवा करने लगे। सत्यादिक गुण तो इनमें स्वयं ही सिद्ध थे।

इनको संसार के समस्त प्रसिद्ध व्यक्ति इन्द्र, धरणेन्द्र, खगेन्द्र, राजा, महाराजा आदि जब अपना गुरु मान नमस्कार करते थे तब अन्य गुणों का वर्णन करना तो व्यर्थ ही है। इस प्रकार तीस हजार वर्ष तक उन भगवान ने संसार के अनेक भोग भोगे थे और इतना समय भी एक क्षण के समान उनका निकल गया था। सो ठीक ही है धर्म के प्रभाव से कीर्ति, लक्ष्मी, सुत, स्त्री, राज्य, स्वर्ग आदि सब सुखों की प्राप्ति होती है, यहाँ तक कि मोक्ष भी मिल जाता है तब और की तो बात ही क्या है?

तीसरा सर्ग समाप्त हुआ ।।3।।

चौथा सर्ग

कोटि चंद्रसम सौम्य जो, जगपालक वृषनाथ ।
शिव सुखदायक आदि जिन, सदा नमाऊँ माथ ।।

एक दिन श्रीविमलवाहन भगवान सैन्य के साथ वन में क्रीड़ा करने के लिए गए थे, कि वहाँ एक तालाब में उन्हें चित्त को सुखदायक चन्द्रमा के समान श्वेत वर्फ (हिम समूह) दिख पड़ी ।

इसके थोड़ी ही देर बाद पिघलकर वह पानी हो गई। बस ! भगवान वैराग्य में लीन हो सोचने लगे - इस बड़े भारी सैन्य, विशाल विभूति, हृस्ट - पुस्ट शरीर, प्रिय लगने वाले कुटुम्ब, स्त्री, पुत्र आदि से मेरा क्या प्रयोजन है? जिस प्रकार बिजली क्षणभर में चमक कर छिप जाती है, उसी प्रकार अल्पकाल तक चमकने वाले समस्त सम्पत्ति धन,यौवन, शरीर आदि इस हिमानी (बर्फ) के समान क्षणभर में नष्ट हो जाने वाले हैं।

माता - पिता के किये पापों को न तो अपने कर्मा का फल स्वयं पाते हैं और उससे नरकादि के दुःख भोगते हैं। हाँ ! पशु के समान इन विषय भोगों को भोगते मेरी आयु के तीन भाग तो यों ही निकल गए, इनमें सद्धर्म

का कुछ भी सेवन नहीं किया । जिन लोगों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को यथेष्ट नहीं पाला और जिनको अपनी कीर्ति बड़ाई की चिन्ता लगी रही, उनका जीवन व्यर्थ है। जो लोग बुढ़ापे में विषयों को जीतकर तप चाहते हैं। वे मेरु पर्वत पर चढ़ने की इच्छा करने वाले पंगु के समान हास्यास्पद होते हैं। काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के द्वार हैं। मुनिगण इनको छोड़कर चिदानन्द चैतन्य का ध्यान करते हैं।

जो लोग गृहस्थावस्था में स्त्रियों के साथ रहकर ममतावान होकर भी धर्माचरण करना चाहते हैं, वे बंध्या के पुत्र को आकाश के फूलों से सुशोभित देखना चाहते हैं। चित्त में अणुमात्र परिग्रह की भी भावना रहने से गधे के सींग के समान मोक्ष प्राप्ति असंभव ही समझना चाहिए । इस प्रकार विचार करते - करते भगवान को तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया और तब नियोगानुसार एक भवातारी ब्रह्मचारी सारस्वत आदि चार लाख आठ सौ बीस लौकांतिक देव आकर उनकी सराहना करने लगे, वे गुणवान दोष रहित वैराग्य रस से परिपूरित जिनेन्द्र भगवान से बोले कि - आपने जो विचार किया है, वह बहुत ही श्रेष्ठ है, उसे प्रयत्न से कार्य में परिणत कीजिए, क्योंकि जो लोग प्रारब्ध कार्य को पूरा कर डालते हैं, वे शूरवीर विवेकी समर्थदाता गुणी और संसार में उत्तम पण्डित समझे जाते हैं। इस जीव ने अनंत बार स्त्री, राज्य, धन आदि के सुख भोगे हैं, तो भी उनसे तृप्त नहीं होता है।

आपके वंश में अनेक विशाल पराक्रमी चक्रवर्ती आदि राजा हो गये हैं, परन्तु वे सब काल के गाल में चले गये । तब बताइये भला निश्चल कौन सा पदार्थ है? विषय सेवन से इन्द्रियों की शक्ति क्षीण होती जाती है, पाप का आस्रव होने लगता है और उससे दुष्कर्म का बंध हो, जीव नरक में जा दुःख भोगता है। जिस प्रकार चंदन के पेड़ की सुगंधि से दूसरे वृक्ष सुगंधित हो जाते है, उसी प्रकार आपके सहवास से अन्य को मोक्षसुख मिल जाता है, तब आपको तो निश्चय ही वह मिल जाएगा ।" लौकान्तिक देवों के इस प्रकार उत्साहवर्धक वचन सुन उन भगवान ने जीर्ण तिनके के समान राज्य छोड़

दिया। यह देख, देवों ने उनका दीक्षाभिषेक किया। सामने मनोहर पालकी रख दी और उसमें भगवान् विराजमान हो लिये। वह पालकी पहले तो सात पैंड तक भक्तिभाव से राजाओं ने उठाई, फिर उसे छियानवे (भवनवासियों के 40, व्यंतरों के 32, कल्पवासियों के 24) इंद्र अपने कंधे पर उठाकर सहेतुकमल उद्यान में ले गए। वहाँ मणिशिला पर विराजमान हो भगवान ने हजार राजाओं के साथ अंतरंग बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग किया।

पर्यंकासन मांडकर ध्यानस्थ हो, सिद्धों को नमस्कार कर माघ सुदी चतुर्थी के दिन अन्तिम प्रहर में जिस समय जन्म का नक्षत्र उदित हो रहा था, स्वयं दिगम्बरी दीक्षा ली। भगवान को दीक्षित देख, देवों ने आनन्द मनाया और नमस्कार, स्तुति कर अपने - अपने स्थान चले गये। भगवान ने तेला धारण किया और उन्हें चौथा मनः पर्यय ज्ञान उत्पन्न हो गया। नन्दन नगर के राजा विजय के यहाँ वे पारणा के लिये गये। राजा ने उन्हें भक्ति भाव से नमस्कार कर पड़िगाहन किया और हाथ जोड़कर स्तुति की कि - भगवन। आज आपके दर्शन करने से मैं कृतार्थ हो गया, मुझ सरीखे क्षुद्र - पुरुष के घर पर आप सरीखे महानुभावों का आगमन अति दुर्लभ है। जन्म-जरा मृत्यु रूपी अग्नि से आकुलित हुए मेरे लिए आपका आगमन चंदन लेप के वा सुधा अथवा रसायन के समान हितकर है। आज मेरे घर कामधेनु आ गई, कल्पवृक्ष की प्राप्ति हो गई अथवा बिना बादलों के वृष्टि हो गई अथवा मुझे परम पद ही मिल गया। हे देव ! जिस प्रकार चन्द्रमा को देखकर समुद्र उमड़ आता है और अपने में नहीं समाकर बढ़ जाता है, उसी प्रकार आपके दर्शन से मेरा हृदय उल्लसित और प्रफुल्लित हो रहा है।

इस प्रकार स्तुति के बाद भगवान के चरण धोए और नवधाभक्ति कर, पुण्य उपार्जन कर दाता के सात गुणों से युक्त हो उसने खीर का आहार दिया, भगवान का निरंतराय आहार होते देख, देवो ने उसके घर रत्नों की वर्षा, दुन्दुभि का शब्द, सुगंधित पवन, अभिषेक वृष्टि और पारिज़ात पुष्पों की वर्षा। ये पाँच आश्चर्य किए सो ठीक ही है - इस संसार में पात्रदान के समान

दूसरा पुण्य नहीं है, जिससे कि तीर्थंकर सरीखे घर आ जाते हैं, तब अन्य पदार्थ की तो बात ही क्या है? जिस प्रकार वट के छोटे बीज से बहुत बड़ा पेड़ हो जाता है, उसी प्रकार पात्र में दिए गए थोड़े से दान का भी महान फल हो जाता है। यदि दान न दिया जाए तो मुनि धर्म का लोप हो जाए इसलिए दान का निषेध नहीं हो सकता । जो लोग अंगहीन हैं उन्हें करुणा से पात्र को भक्तिपूर्वक दान देना चाहिए । रसोई का एक अंश भी यदि पात्र को दिया जाए तो वह लाख गुना फलता है और उसके पापों का नाश होकर भोग भूमि के सुख मिलते हैं। पारणा कर चुकने के बाद भगवान वन में पधार गए ।

इस प्रकार सामायिक आदि तपों का शुद्ध आचरण करते हुए उन्हें जब तीन वर्ष बीत गए तो सहेतुकमल वन में माघ शुक्ल षष्ठी के दिन अपराह्न (शाम) के समय दीक्षा नक्षत्र के उदित रहने पर जामुन के वृक्ष के नीचे घातिया कर्मों का नाश कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया । देवों ने आकर भगवान् का केवलज्ञान कल्याणक मनाया और समवशरण की रचना की । भगवान नाना देशों में विहार कर अपनी दिव्य ध्वनि से असंख्य भव्यों को संबोधने लगे ।

अथानन्तर इसी जम्बूद्वीप में छह खंडों से युक्त भरतक्षेत्र है, उसके सौराष्ट्र देश में द्वारावती नाम की नगरी है, उसमें तीन खण्ड का अधिपति स्वयंभू रहता था और धर्म उसका छोटा भाई था । यह स्वयंभू अर्धचक्री नारायण था और धर्म बलभद्र था ।

इसके सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा सेवक थे और सोलह हजार ही रानियाँ थी । नौ करोड़ घोड़े, ब्यालीस लाख हाथी, शंख, दण्ड, गदा, चाप, खड्ग, चक्र और शक्ति ये सात रत्न थे, अड़तालीस करोड़ गाँव थे और डेढ़ करोड़ बैल थे । इसका छोटा भाई धर्म हल, मूसल, गदा और माला इन चार शस्त्रों का स्वामी था । तेजस्वी नारायण स्वयंभू जिस समय पृथ्वी का पालन निर्विघ्न कर रहा था, नाना देशों में विहार कर राग - द्वेष से रहित, पवित्र, शांत, निर्लोभी, यथार्थ तत्व के उपदेशक श्रीविमलवाहन भगवान वहाँ

पधारे, इंद्र की आज्ञा से कुबेर ने उसी समय अनुपम अवर्णनीय मानस्तंभादि शोभा से विशिष्ट समवशरण की रचना कर दी और उसके बीच अचिंत्य विभूति से युक्त सिंहासन रचा जिस पर केवलज्ञानी भगवान विराजमान हुए। उनकी भक्ति में लगे हुए देवों के जय - जय शब्दों से और दुन्दुभि के गंभीर नाद से माली को बड़ा आश्चर्य हुआ और जब उसने सब ऋतु के फल - फूल आए देखे तो आनंद की सीमा न रही।

उसने इसकी सूचना राजा को देनी उचित समझी और वह सब तरह के फल - फूल ले, राजा स्वयंभू के पास पहुँचा। स्वयंभू वे ऋतुफल देख बहुत ही चिन्तित हुआ और उसने मन में विचारा कि पहले के आचार्यो ने असमय में फल - फूल आने का फल राजा का अनिष्ट होना कहा है। भाई को इस प्रकार चिन्तित देख बलभद्र ने उसका कारण पूछा। उत्तर में स्वयंभू ने कहा - किष्किंधा नगर में सुन्दर नाम का विशाल ऐश्वर्य वाला राजा था। उसके कमला रानी से उत्पन्न परम सुन्दरी लड़की थी। उसने मंदार जाति के फूलों की माला वाले पुरुष के साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा कर ली। यह सुन राजा को बड़ी चिन्ता हुई। उसने सोचा कि - यह लड़की कैसी मूर्ख है? अरे! जिन मंदार के फूलों की माला स्वर्ग में ही मिल सकती है और देवगण जिसे पहनते हैं वह भला मनुष्यों को कैसे प्राप्त होगी? इसलिए स्वयंवर कर देना ही अच्छा है क्योंकि उसके बिना सुलभता से वर नहीं मिल सकता। इसके बाद स्वयंवर के समाचार लिख राजा ने सब जगह पत्र भिजवाये और उन्हें पढ़कर स्वयंवरार्थी राजपुत्र एकत्र होने लगे।

निश्चित दिन प्रातः काल स्वयंवर मण्डप में जब सब राजपुत्र अपने - अपने स्थान पर बैठ गये तो धाय के कंधे पर हाथ रखे हुए कन्या, वर पसंद करने के लिये आई। कंचुकी ने सबका परिचय दिया परन्तु किसी के गले में मंदार पुष्पों की माला न होने से वह बिना वरण किये रणवास में लौट गई। एक दिन सब राजाओं की सभा लग रही थी। कन्या भी वहाँ थी कि इतने में एक शरीर में राख लपेटे, नग्न, जटाधारी, गले में हड्डियों की माला डाले और

शंखचक्र लिये एक पुरुष आया और पद्मासन लाकर सभा में बैठ गया। इसी समय में मणिचूल नामक एक इन्द्र नन्दीश्वर द्वीप की वंदना कर लौट रहा था कि नीचे इस घटना को देख उसकी देवागंना ने सब वृतान्त पूछा - उत्तर में उसने कहा कि एक स्वयंवर मंडप है। कन्या मंदार पुष्पों की माला किसी के गले में न देखकर वरण नहीं कर रही है। पति से यह समाचार जान हँसी से इन्द्राणी ने मणिचूल के गले की माला उतार कपाली के सामने डाल दी। कापालिक उस माला को पहनकर मौन से बैठ गया।

कन्या उसे गुप्त भेषधारी समझ वरने के लिए आयी परंतु पिता, धाय तथा राजाओं ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। यह देख कापालिक क्रोध के आवेश में आ शमशान में चला गया और मृत मनुष्य के माथे पर उन राजाओं को वश करने के लिए वज्रश्रृंखलिका नामक विद्या साधने लगा। अनुष्ठानसमाप्ति के दिन आधी रात के समय वह विद्या भयानक शब्द करती हुई बीस मुँह छत्तीस हाथ बनाकर आई और उसे भय दिखाने लगी। कापालिक जब किसी प्रकार चलित न हुआ तो वह प्रसन्न हो वर माँगने के लिए कहने लगी। उत्तर में कापालिक बोला कि - देवी ! तुम्हारी यही इच्छा है और मुझ पर प्रसन्न होई गई हो तो मुझे दो यक्ष योद्धाओं को प्रदान करने का वर दीजिये जिससे मैं रण में किसी से न जीता जा सकूँ और सदा मैं ही विजयी होऊँ।

कापालिक की प्रार्थना स्वीकार कर देवी अन्तर्निहित हो गई और वह राजपुत्रों से सुशोभित स्वयंवर मंडप में आया। जब नाना तरह के बाजे बजने लगे और मंगल गीत गाना प्रारम्भ हो गया तो कन्या धाय के साथ वहाँ आई और मुकुट आदि अलंकारों से शोभित राजाओं को देखने लगी, कि इतने में उसकी दृष्टि उस कपाली पर पड़ी। अपनी प्रतिज्ञानुसार मंदार पुष्पों की माला से युक्त उस कपाली को ज्यों ही वरना चाहती थी कि राजा लोगों ने रोक दिया और 'मारो मारो इस दुष्ट निर्दयी कपाली को' इस प्रकार कोलाहल करने लगे। अब तो कपाली को भी गुस्सा आ गया, वह उनसे युद्ध करने

लगा । उसके शंख बजाने पर पूर्व सिद्ध दोनों यक्ष भी आ धमके और प्रलयकाल के समान राजाओं को कष्ट होने लगा । उस कपाली ने अपनी विद्या के बल से समस्त किष्किंधाधिप आदि राजा बांध लिये । परन्तु इसी बीच में आकाश मार्ग से जाते हुए किसी अन्य दुष्ट ने वह कन्या हर ली सो ठीक ही है, दुर्जन पुरुष क्या - क्या उपद्रव नहीं करते? इसलिए हे भाई ! जो बात असम्भव सी दीख पड़े उसका भला - बुरा फल अवश्य विचारना चाहिए । इसीलिए मुझे चिंता हो गई है।

नारायण की यह बात सुन माली ने कहा - महाराज आपके पुण्य प्रताप से श्री १००८ विमलनाथ भगवान का समवशरण मदनोद्यान में आया है। उनके ही प्रभाव से छहों ऋतुओं की शोभा एक साथ दिखने लगी है। अब तो स्वयंभू को बड़ा आनन्द हुआ । वह परोक्ष विनय करने के लिए उठा और सात पैंड चलकर भगवान को नमस्कार किया । इसके बाद हर्षित हो उसने अपने समस्त आभूषण उतारकर माली को दे दिये । नारायण स्वयंभू ने भगवान के आगमन और उनकी वन्दना करने चलने के लिए नगर में ढोढ़ी पिटवायी और स्वयं अपने भाई बलभद्र सहित सजधज कर नगर के बाहर हो चला । दूर से ही सुवर्णमयी मानस्तंभों को देखकर उसने राज चिन्ह सब दूर कर दिए । विनयावंत हो समवशरण में प्रवेश किया और उसके भीतर की अद्भुत शोभा को देखते - देखते वह जिनेन्द्र भगवान के सिंहासन के समीप जा पहुँचा । तीन प्रदक्षिणा दीं और भाई धर्म के साथ नाना तरह से स्तुति कर जल आदि आठ द्रव्यों से भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की ।

इसके बाद वे दोनों भाई मनुष्यों के कोठे में बैठकर श्री जिनेन्द्र का उपदेश सुनने लगे । उसके बाद नारायण ने नमस्कार कर पूछा - हे जगद्बंधु स्वामिन् । आप समस्त पदार्थों को प्रत्यक्ष जानते हैं इसलिए कहिए कि यह जीव नाना इन्द्रियों को सुख प्रदान करने वाले स्वर्ग में तो किस कारण से जाता है और अनन्त दुःखों के समुद्र नरक में किस कारण से? तिर्यंच योनि में क्यों जन्म लेता और मनुष्य जन्म कैसे पाता है? स्त्री या पुरुष पर्याय भी कैसे

मिलती है? इसके सिवा थोड़ी, बहुत आयु, भोगरहित या सहित अवस्था, सौभाग्य या दुर्भाग्य, बुद्धिमत्ता या मूर्खता, धीरता या कायरता, अमीरी या गरीबी, सुपुत्र वा कुपुत्र, अंधे बहिरे, रोगी वा नीरोग, परोपकारी वा कृतघ्नी, गूंगा या पंगु, सुरूप वा कुरूप, पीड़ासहित वा रहित, पंचेन्द्रिय वा एकेन्द्रियादि, अल्प दिन तक संसार में घूमने वाले या बहुत दिन तक दुःख भोगने वाले, बगुला, उल्लू, बिल्ली, कौआ, गधा, भंगी आदि अशुभता किन - किन कारणों से होती है और वह कौन से कर्मों के विपाक का फल है? यह स्पष्ट कीजिए। हम सब भव्य लोग सुनने के इच्छुक हैं।

नारायण का उत्तम प्रश्न सुन मेघ गर्जना के समान गंभीर शब्द करती हुई भगवान की दिव्य ध्वनि खिरने लगी। उन्होंने कहा - तुमने जो प्रश्न किए हैं, वे बहुत ही उत्तम हैं, उनका उत्तर कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो - जो लोग हिंसक, असत्य बोलने वाले, पराई स्त्री और धन के चुराने वाले, मायाचारी, घमंडी, दूसरों के सदा दोष देखने वाले और कृतघ्न होते हैं, वे पापी निश्चय से दुःखों के समुद्र नरक में जाते हैं, जो लोग दानी, अर्हंत देव के पूजक, तपस्वी, इंद्रियों को वश करने वाले, कोमल परिणामी, पवित्र विचार वाले, मिष्ट, हित, मित बोलने वाले और गुरुओं के भक्त होते है वे स्वर्ग में जा सुख भोगते हैं। जो क्रूर पुरुष अपने मतलब के लिए दूसरों से स्नेह करते हैं परन्तु भीतर खोटे अभिप्राय रखते हैं और जो मायाचारी आडम्बर दिखाने वाले, ईर्ष्यालू, बहुत भोजन करने वाले, बहुत सोने वाले होते हैं, वे नाना दुःखों से पूर्ण तिर्यंच गति में जाते हैं और जो पुरुष उदार, विवेकपूर्ण, दया दान में तत्पर, पर की निन्दा न करने वाले होते हैं, वे मरकर मनुष्य गति में जन्म लेते हैं। जो स्त्री सत्यवादिनी, पवित्र एकदेश ब्रह्मचर्य धारण करने वाली, स्थिर मन वाली, धर्मात्मा होती है, वह मरकर मनुष्य होती है। जो पुरुष स्त्रियों में अधिक आसक्ति रखने वाला,कामी, चपल, धूर्त और सदा स्त्रियों का अन्वेषण करने वाला होता है, वह स्त्रीपर्याय पाता है। जो लोग पशुओं की नाक, कान छेदते हैं, व खोटे विचार रखते हैं और सदा अपना

श्रृंगार ही किया करते हैं, वे नीच नपुंसकलिंगी होते हैं। जो जीवों को पीड़ा देता रहता है, पक्षियों के घोंसले तोड़ देता है और विष खाकर मरता है, उसकी अल्प आयु होती है। जो सदा जीवों की रक्षा करता है, सबका उपकार करता है और पर की भलाई चाहता है, उसकी आयु बहुत होती है। जो द्रव्य रहते भी दान नहीं करता अथवा दान कर पश्चाताप करता है तथा देते हुए को रोक देता है, वह भोगरहित दरिद्री होता है। जो सदा बड़ों की विनय करता है, जिनेन्द्र भगवान की आज्ञानुसार चलता है और दूसरों को दुःख न पहुँचाने वाला शांतस्वभावी होता है, वह यशस्वी होता है।

जो भेंट आदि बिना लिए पढ़ते - पढ़ाते हैं वे निर्मल बुद्धि के धारक होते हैं। जो क्रोध के वशवर्ती हो गुणी, तपस्वी, यशस्वी और विद्वान का तिरस्कार करता है, वह निर्बुद्धि हो जाता है। जो देवगुरु की भक्ति करने वाला, पाप - पुण्य का ज्ञाता, जिनेन्द्र भगवान के गुणों का ध्यान करने वाला होता है, वह विद्वानों में श्रेष्ठ होता है। जिसके नास्तिकता रहती है, जीव आदि वा धर्म अधर्म को नहीं मानता, वह निंदनीय मूर्ख होता है।

जो मृग, हंस, तोता आदि पक्षियों के बच्चों को पिंजड़े में बंद कर पोषता है, वह पापी भव - भव में कातर होता है। जो जीवों की रक्षा करने में तत्पर है दूसरों का दुःख दूर करता है और भूखों को भोजन कराता है वह पुण्यात्मा वीर होता है। जो पास में द्रव्य न रहते भी दान करने की इच्छा रखता है, वह थोड़े से दान के प्रभाव से भी महालक्ष्मीवान हो जाता है। जो पहले तो दान दे देता है पीछे पछताता है, वह दान का फल द्रव्य प्राप्त कर बुढ़ापे में निर्धन हो दुःख भोगता है।

जो पशु - पक्षियों को तथा उनके बच्चों को त्रास देते हैं, उनके पुत्र पैदा नहीं होते कदाचित् हों भी तो उन्होंने जो पहले दूसरों को कष्ट दे अपने सिर पर ऋण का बोझ लाद लिया है, उसके प्रभाव से मर जाते हैं और जिनके वह ऋण नहीं है अर्थात् जो पशु - पक्षियों के बच्चों को कष्ट नहीं देते, उनके परम चतुर सुंदर बच्चे होते हैं। जो बिना सुनी बात कहता है, वह बहरा

और बिना देखी को देखी हुई निवारण करने पर भी बतलाता है, वह जन्म का अंधा पुरुष होता है। उत्तम कुल में पैदा होकर भी जो माँस मदिरा का भक्षण करता है, उसके अजीर्ण उदर रोग होता है। जो मुनियों को देखकर मदांध हो थूकता है, वह रक्तपित्त रोग से दूषित कोढ़ी होता है। जो जाति के अहंकार से मत्त, स्वामी का द्रोह करने वाले कृतघ्नी होते हैं, वे दूसरों की नौकरी करने वाले दरिद्री होते हैं।

जो कृपालु, दूसरों के धन स्त्री आदि में शुद्ध मन रखने वाले, औषध दान करने वाले होते हैं, वे रोग रहित होते हैं। जो जैन सिद्धांत के सूक्ष्म भेद प्रभेदों को सुनकर निन्दा करता है, वह मूढ़बुद्धि गूंगा होता है। जो व्रतशील, यम, नियम आदि को लेकर विषयों में आसक्त हो छोड़ देता है, उसके कंपादि रोग होते हैं। जो मूढ़ पुरुष पक्षियों के पंख काट देते हैं। वे उस पाप से पंगु होते हैं। जो दुष्कर तपों को सदा तपते हैं, वे कामदेव के समान सुंदर होते हैं। जो स्वयं तो तप नहीं कर सकते परन्तु तप करने वालों की निंदा करते हैं, वे अंगहीन कुरूप होते हैं । जो जीव निर्जरा के वशीभूत हो क्रोध से प्राण छोड़ते हैं, वे भव - भव में वेदनायुक्त होते हैं। जो धर्म में लीन मुनियों की शुश्रूषा करते हैं, सदा विरक्त रहते हैं, वे बाहुबलि के समान बली उन्नतकाय होते हैं। जो कंदमूल को खाने वाले हैं, पृथ्वी का कर्षण करते हैं, वे मरकर एकेंद्रिय स्थावर होते हैं।

भगवान अर्हंत के गुणों में मग्न, पुण्य पाप के लक्षणों को जानने वाले, धर्मभक्त, सदाचारी और विनयवंत पुरुष संसार में थोड़े दिन रहते हैं और इनसे विपरीत हैं, वे अनंत काल तक दुःख भोगते रहते हैं। सम्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारक जीव शुक्लध्यान का आराधन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। जो स्त्रियाँ जिनमंदिरों की निन्दा करने वाली हैं, दूसरों के गुणों का लोप करती हैं, लड़ाई - झगड़ा करने वाली हैं, बक्र दृष्टि से देखती हैं, वे नियम से शाकिनी भूतिनी होती हैं। जो भीतर में कपट रखते हैं, दूसरों के कल्याण व धन को देख डाह करते हैं वे मरकर उल्लू, गदहा और

कुत्ते होते हैं। जो गुरु व धर्म की निन्दा करता है, और देव द्रव्य खाकर पेट भरता है, वह नीच काक योनि पाता है। जो अपनी जाति का घमंडी, क्रोधी, मृत्यु से डरने वाला, आत्मप्रशंसी, मुँह पर मीठा, भीतर दुष्ट होता है, वह बड़े कष्ट से मरता है और जो ऐसे नहीं हैं, उन्हें मरते समय कष्ट नहीं होता। जो दुष्ट कुल में पैदा होकर भी सरल परिणामी, सद्बुद्धि, धर्मज्ञ और मायाचार रहित होते हैं, वे तो भव्य हैं और जो उच्चकुल में उत्पन्न होकर कुटिल, भ्रांत, चुगल और धर्म से विपरीत चलने वाले होते हैं, वे अभव्य हैं।

जो असद् धर्म का प्रचार करने वाले, अति लोलुपता से कुलाचार के बैरी तपस्वी हैं, वे मरकर मुद्गल होते हैं।" इस प्रकार नारायण द्वारा पूछे गए प्रश्नों का सविस्तार उत्तर देकर श्रीविमलनाथ भगवान की दिव्य ध्वनि बंद हो गई। उसे सुनकर बहुत से भव्यों को तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई और बहुत - से संसार शरीर भोगों से विरक्त हो तपस्वी हो गए। इसके बाद दोनों भाई भगवान को नमस्कार कर नगर को लौट गए और सुख से राज्य भोगने लगे। अथानंतर श्रेणिक ने श्री महावीर स्वामी से पूछा कि -भगवन्!

उन स्वयंभू और धर्म ने ऐसा कौन सा कार्य किया था जिससे वे नारायण और बलभद्र हुए। उत्तर में भगवान् कहने लगे - इसी जंबूद्वीप के पश्चिम विदेह क्षेत्र में गंधसमृद्ध नाम का एक देश है। उसका राजा मित्रनंदी था। उसने एक दिन माली के मुँह से सुव्रत जिनराज का आगमन सुना और वह उनकी वंदना के लिए गया। वहाँ जाकर उसने जिनराज की तीन प्रदक्षिणा दीं, भक्ति से स्तोत्र पढ़ा और नमस्कार कर बैठ गया। जिनराज ने संसार की अनित्यता बतलाते हुए धर्म का व्याख्यान किया। वे बोले कि - यह शरीर, धन, विषयसुख, यौवन, जीवन सब ओस की बूँद के समान क्षणभर में विनश जाने वाले हैं। ये स्त्रियाँ स्वार्थ की भरी हैं, मतलब गांठने के लिए हावभाव प्रीति दिखलाती हैं और उसके सिद्ध हो जाने पर छोड़ देती हैं जो रात दिन 'मेरा, मेरा' चिल्लाते रहते हैं, वे पग - पग में दुःख भोगते हैं और आयु के अंत में

दुर्गति को जाते हैं। स्त्री - पुत्र देहादिक सब क्षण - विनाशीक हैं, अतः किसी के भी नहीं हैं, ये जब तक आँखें खुली हैं, तब तक ही तो दीखते हैं, जहाँ आँखें मिचीं, आयु का अंत हुआ, फिर कुछ नहीं मालूम पड़ता। जिस प्रकार काठ के जलाने से अग्नि उसी में से निकलती है, उसी प्रकार अपनी देह के भीतर ही अनंत दर्शनादि युक्त परमानंद की खानि आत्मा मौजूद है, ध्यान लगाने से ही उसके दर्शन होने लगते हैं।

भीतरी मल तो मंत्रजाप से ही दूर होता है, परंतु अन्य बाह्य क्रियाओं के आरंभ से उस धर्म मार्ग की प्रतिष्ठा रहती है। यदि बाह्य क्रिया असद् की जाय तो योगियों को भी अधोगति में ही जाना पड़ता है। इस वास्ते मुक्ति सिद्ध करने के लिए शांत और संयम का ही आश्रय लेना उचित है। इस प्रकार सुव्रत, भगवान का उपदेश सुन मित्रनंदी को वैराग्य हो गया। हे मगधेश्वर ! संसार के दुःखों का ध्यान कर उसने जिनदीक्षा ले ली। अब मुनि मित्रनंदी कठोर तप करने लगे। उन्होंने एक दो तीन - तीन मास के उपवास करना प्रारंभ कर दिया। तप के तेज से उनकी दीप्ति बढ़ गई, ऋषिगण भी उनकी स्तुति करने लगे। उनका शरीर कृश हो गया था, आलस्य पास भी न फटकने पाता था। सदा ध्यान में लीन रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्षों तक तप - तपकर आयु के अंत में उन्होंने संन्यास धारण कर मरण किया और वे अनुत्तर विमान (सर्वार्थ सिद्धि) में उत्पन्न हुए।

वहाँ वह तैंतीस हजार वर्ष बाद एक बार आहार लेते थे, तैंतीस पक्ष बाद एक श्वांस लेते थे और शांत सुख का भोग करते थे। अथानंतर इस पृथ्वी पर धनादि से अतिशोभायमान द्वारावती नाम की नगरी में भद्र नाम का राजा राज्य करता था, सुभद्रा उसकी रानी थी। एक दिन वह शयनगृह में सो रही थी कि उसने रात्रि के अंत में शुभ स्वप्न देखे। पहले स्वप्न में उसने मद झरता हुआ हाथी देखा, दूसरे में जल से भरा समुद्र देखा, तीसरे में कलंक रहित पूर्ण चन्द्रमा देखा और चौथे स्वप्न में मुख में प्रवेश करता सिंह देखा। इसके बाद प्रातः कालीन बाजों के शब्दों और वंदितगणों के गीतों से वह

महारानी उठी। नित्यक्रिया कर वह अपने स्वामी के पास उन स्वप्नों का फल पूछने लगी। राजा ने निमित्त ज्ञान से उसका फल जानकर कहा – प्रिये ! तुमने जो हाथी देखा है, उसका फल यह है कि कुटुम्ब का उद्धार करने वाला एक पुत्र तुम्हारे शीघ्र ही उत्पन्न होगा। समुद्र देखने से वह गुणों का समुद्र, पूर्णचंद्र देखने से पूर्ण ज्ञान (केवलज्ञान) का धारी और सिंह देखने से विशाल पराक्रम का अधिपति होगा। राजा से स्वप्नों का श्रेष्ठ फल सुन रानी को महा आनन्द हुआ और वह भवन में लौटकर आनंद से रहने लगी।

इसके बाद सर्वार्थसिद्धिवासी अहमिन्द्र पुण्य प्रभाव से चयकर सुभद्रा के गर्भ में अवतीर्ण हुआ और उसके पुण्य से माता को किसी प्रकार का भी कष्ट न हुआ। जब नव मास पूर्ण हो गए तो रानी ने सुंदर गुणी पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम धर्म रखा गया। जो बलभद्र पद का धारक हुआ। अथानंतर इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में श्रावस्ती नाम की एक मनोहर समृद्धिशाली पुरी है। वहाँ का राजा सुकेतु था। वह सदा भोगों में लिप्त रहने वाला जुआरी था। यद्यपि बुद्धिमान मंत्री उसको सदा निषेध ही किया करते थे, तो भी वह जुआ खेलना न छोड़ता था, सो ठीक ही है, जो स्वाद जान जाते हैं, उनसे वह काम कठिनता से छोड़ा जाता है। एक दिन सुकेतु अशुभ कर्म की प्रेरणा से अपने शत्रु राजा के साथ मंत्रियों के निषेध करने पर भी जुआ खेलने लगा। उसने समस्त धन, समस्त राष्ट्र, समस्त सैन्य और यहाँ तक कि पट्टरानी भी दांव पर लगा दी और उन सबको एक – एक कर हार गया। इस प्रकार जब केवल अपना शरीरमात्र रह गया तो उसे बड़ी लज्जा मालूम हुई।

पश्चाताप और शोक से उसका मुँह सूख गया। यह देख शत्रु राजा ने उससे कहा – दानी, धनी, मानी और पराक्रमी पुरुष अन्य की पृथ्वी पर वास नहीं करते इसलिए अब तुम्हें भी चुप न रह यहाँ से दूसरी जगह चल देना चाहिए। शत्रु के इन मर्मभेदी वाक्यों से पीड़ित हो वह सुकेतु वहाँ से जंगल की ओर चल दिया और वहाँ उसे पुण्य के उदय से सुदर्शन मुनिराज के दर्शन हुए। सुकेतु ने उनसे धर्मोपदेश सुना और विरक्त हो जिनदीक्षा ले घोर

तप तपना प्रारम्भ कर दिया परन्तु देश, द्रव्य आदि हार जाने से उसके अंतरंग में वही लौ लगी थी इसलिए उसने, उसके प्राप्त होने का निदान किया। उसने सोचा कि मरने पर मेरे इस तप के फल से मुझे महाधन की प्राप्ति हो, शत्रुओं से मैं अजेय होऊँ, अनेक गुण, कला और पांडित्य का स्वामी होऊँ। इसके बाद आयु क्षय होने पर वह सन्यास विधि से मरा और लांतव स्वर्ग में जा उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने चौदह सागर की आयु पाई और नाना तरह से स्वर्ग सुख भोगे। अथानंतर उसी द्वारावती नगरी के राजा भद्र की दूसरी रानी पृथ्वीमती एक दिन सो रही थी कि उसने सूर्य, चंद्रमा, लक्ष्मी, विमान, समुद्र, इन्द्रधनुष और सिंह क्रम से सात पदार्थ स्वप्न में देखे।

इसके बाद उसकी आँख खुल गई। पति ने उन स्वप्नों का फल जब पुत्ररत्न की प्राप्ति होना सुना तो उसे बड़ा आनंद हुआ। गर्भ के दिन समाप्त हो जाने पर प्रतापी, आनंद करने वाला, तीन खण्ड की लक्ष्मी का भोक्ता, शत्रुओं का नाशक और महापराक्रमी पुत्र पैदा हुआ और उसका नाम स्वयंभू रखा गया। इस प्रकार वे दोनों धर्म और स्वयंभू दूज के चंद्रमा के समान दिन पर दिन बढ़ने लगे। उन दोनों में प्रगाढ़ स्नेह था और एक प्रेम की दो मूर्ति ही मानो बना दी गई हैं ऐसे मालूम पड़ते थे। बड़े होने पर वे दोनों एक साथ राज्य का भोग करने लगे, अनेक सभ्य पुरुषों से युक्त वे ताराओं से सुशोभित चन्द्रमा और प्रतापी सूर्य सरीखे लगते थे। जिसने सुकेतु को जुए में जीत लिया था और उसके राज्य पर अपना कब्जा कर लिया था, वह मरकर रत्नपुर का राजा मधु हुआ।

उसके भरतक्षेत्र के तीन खंडों की लक्ष्मी थी, चक्र आयुध था, शत्रुओं से अजेय था और पृथ्वी पर प्रतिनारायण नाम से प्रसिद्ध था। एक दिन मार्ग में राजा मधु के लिए बहुत - से रत्नों से युक्त भेंट सेवक ले जा रहे थे, उसे देख मानी स्वयंभू ने पूछा कि - यह किसके लिए ले जा रहे हो? उत्तर में सेवकों ने कहा - देवसेन राजा ने शत्रुओं के विजेता महापराक्रमी चक्रवर्ती मधु के लिए यह भेंट भेजी है, उसे हम ले जा रहे हैं। मधु का नाम सुनते ही

स्वयंभू को पूर्व भव का बैरी होने से क्रोध आ गया और उसने उनसे जबरदस्ती भेंट छीन लेने का पक्का विचार कर लिया। स्वयंभू ने क्रोध में आकर अपने शब्द से आकाश को गुंजा देने वाला तीर छोड़ा और वह हाथी के मस्तक को छेदकर सात तालों को पार कर गया। लोगों ने जब उस तीर छोड़ने के शब्द को सुना तो वे डर गए और उसे प्रलयकालीन समुद्र की गर्जना समझने लगे। भाई धर्म के निषेध करने पर तो छेड़े गए क्रोधी साँप की तरह उसका क्रोध और भी उबल पड़ा। यह देख धर्म ने उसे बहुत प्यार और शांत उपदेश के द्वारा कहा कि भाई !

जो स्वभाव से ही दुष्ट, हीन जाति, अज्ञानी, नीच पुरुष होते हैं, वे भी गाय चराने वाले (ग्वाले) को मारकर कभी गाय छीनना पंसद नहीं करते, फिर तुम तो ज्ञानी उच्चकुली श्रेष्ठ पुरुष हो, तुम्हें तो रखवारों को मारकर कोई वस्तु ग्रहण ही न करनी चाहिए।आपत्ति पड़ने पर भी सज्जन लोग पापकर्म का आचरण नहीं करते, क्या भूख लगने पर मुर्गे की तरह हंस को भी कभी कीड़े - मकोड़े खाते देखा है? तू शूरवीर गुणी पुरुष है, तुझमें लक्ष्मी का अनुराग है, वह तुझे छोड़ कहीं जाना नहीं चाहती। जो लोग शिष्ट पुरुषों के चलाये हुए क्रम को भंग नहीं करते, वे ही वास्तव में शूर, विचारशील, दानी, धनी, मानी, रूपवान और धीर हैं। सिंह अंजनगिरि के समान उच्च, हस्तियों के कुंभस्थल को विदार कर माँस खाने का प्रेमी है, वह क्या कभी मद से चिल्लाते हुए श्याल को मारकर खा अरमान निकालते है?आज तक यह तो कभी देखने की तो क्या बात? सुना भी नहीं गया कि, किसी राजा ने किसी दूत को मारा हो ! यहाँ तक कि माँसभक्षी म्लेच्छ लोग भी ऐसा काम नहीं करते।

इसी विषय में एक कथा है, उसे तुम ध्यान लगाकर सुनो। इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक चम्पापुरी है। वहाँ का राजा कामदेव के समान सुंदर महासेन था, उसके मदनवेगा नाम की रानी थी। एक दिन उज्जयनी नगर का रहने वाला चित्रकर्म नामक नट उस राजा की दानशीलता की प्रशंसा सुन घूमता - फिरता वहाँ आया। आकर उसने नाना रस,

अलंकार, हाव, भाव, लय, तान आदि नाट्य कलाओं से उस राजा का मन वश कर लिया परन्तु इतना होने पर भी वह नट वहाँ छह महीने तक अपने कला - कौशल दिखलाता पड़ा रहा, अपने पास से खर्च कर खाता रहा, परन्तु कृपणता से उस राजा ने कुछ भी द्रव्य न दिया। जब उस नट के पास कुछ भी खर्च करने को न रहा तो उसने राजा से भिक्षा माँगी।

बस ! अब तो राजा के क्रोध का ठिकाना न रहा, उसने सेवकों से कहा -अरे ! इसके पास जो कुछ है, वह सब छीन लो और मार - पीटकर निकाल बाहर करो। राजा की यह आज्ञा सुन यद्यपि मन में खेद हुआ तो भी सेवकों ने उस विचारे नट को नगर से बाहर निकाल दिया। अपमान द्वारा निकाले जाने से उस नट को महान दुःख हुआ, वह रैवतिक पर्वत पर से कूद कर मर गया और उस समय एक मुनिराज से पंचनमस्कार मंत्र सुन अपने प्राण छोड़े। मंत्र के प्रभाव से वह नट इसी नगरी के धनेश व्यवहारी की कमला स्त्री से मृगकेतु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी नगर में मेघ नाम का एक और सेठ है। उसकी स्त्री का नाम कायांकी है। एक दिन उस पर मृगकेतु की दृष्टि पड़ी और वह कामासक्त हो मन में बुरा अभिप्राय करने लगा। उसने विचारा कि - यदि इस सुन्दरी के साथ मेरा समागम न हुआ तो फिर यह जीवन, यह धन, यह घर और सुख सब व्यर्थ ही है।

बस ! यह सोचकर कायांकी से उसने एक दिन संगम करने की इच्छा प्रकट की। उसके कटुक वचनों को सुनकर कायांकी को यद्यपि क्रोध आ गया, तो भी ऊपर से उससे बिना कुछ कहे सुने वह घर में चली गई। इसके बाद मृगकेतु ने बहुत से उपाय कायांकी के साथ व्यभिचार करने के लिए किये परन्तु जब एक भी सफल न हुआ तो वह पापी राजा के पास गया और बोला कि महाराज ! सिंहलद्वीप में एक गंधिल नाम का पक्षी होता है। यदि वह यहाँ किसी प्रकार लाया जा सके तो बहुत उत्तम हो। राजा ने जब उसके गुण और लाभ पूछे तो उसने कहा - जिस देश, जिस राज्य और जिस घर में वह पक्षी रहता है, उसमें कभी दुष्काल नहीं पड़ता और न कोई अनिष्ट ही होता

है। यह सुन राजा ने उस पक्षी को लाने का उपाय पूछा तो मृगकेतु ने उत्तर दिया कि - महाराज ! इस नगर में जो मेघ सेठ रहता है, वह वहाँ जाकर ला सकता है। मृगकेतु की बात पर विश्वास कर राजा ने मेघ सेठ को बुलाया और उसे अति आग्रह के साथ सिंहलद्वीप को भेज दिया । अवसर पाकर मृगकेतु कायांकी के पास अपनी दुरिच्छा पूर्ण करने के अभिप्राय से गया । कायांकी बड़ी चतुर स्त्री थी । उसने मन में उससे बचने का उपाय सोचकर कहा - आइए ! बैठिए !! आपने मुझ पर अति कृपा की जो आप मेरे घर पर पधारे ।

इसके बाद उसने एक विष्ठा के भरे गड्ढे के ऊपर बिना बुना एक पलंग बिछा रखा था और उस पर एक मनोहर कपड़ा बिछा रखा था, उस जगह मृगकेतु को बैठाया । बस ! अब क्या था? वह उस पर बैठते ही धड़ाम से उस नरक तुल्य गड्डे में गिर पड़ा सो ठीक ही है - चतुर पुरुष जो काम करते हैं, उसका पहले से किसी को पता नहीं चलता। अब वह मृगकेतु काक की तरह उसी गड्ढे में पड़ा - पड़ा दुःख भोगने लगा और जो कुछ बचा - खुचा कायांकी उसको खाने को देती उसी से पेट भरने लगा । इसके बाद मेघ सेठ छह महीने के बाद पक्षी को न पाकर लौट आया । घर आकर स्त्री से उसने मृगकेतु की सारी हकीकत सुनी तो उसने सोचा कि इसी दुष्ट को बाहर निकाल कर विचित्र पंखों से सजाकर क्यों न राजा की सेवा में उपस्थित करूँ ।

बस ! यही सोचकर छह महीने तक निरंतर पाए हुए कष्टों से दुबले हुए उस मृगकेतु को विचित्र पक्षी बनाकर राजा की सभा में उपस्थित किया और कहा - महाराज ! यही वह विलक्षण गंधिल पक्षी है। मृगकेतु की ऐसी दुरावस्था देख नगर के सब स्त्री - पुरुष ताली पीट - पीट कर हँसने लगे । धनेश के पुत्र को कुमार्गगामी समझ राजा ने उसे नगर व देश से निकाल दिया । तिरस्कारजन्य बैर के वशीभूत हो उसने समस्त नगर के नाश करने का बुरा निदान बांध प्राण छोड़े और वह उसी नगर के भयंकर वन में बड़ी - बड़ी दांढों का धारक, निष्ठुर, क्रोधी, हड्डियों की माला पहनने वाला राक्षस हुआ और मनुष्यों को मार - मार कर खाने लगा । उस राक्षस के

डर से लोग सदा व्याकुल रहने लगे, उनका खाना पीना भी कठिन हो गया, मरने के डर से लोग बाहर भी न निकले । जब नगरवासियों का अति क्षय राजा ने देखा तो अनेक तर्क - वितर्कों से यह निश्चय किया कि प्रतिदिन क्रम से एक आदमी उसके पास भेजा जाए जिससे बाकी लोग निर्भय रहें एवं वह सदा वन में ही रहा करे । यह विचारकर उस राक्षस के पास एक दूत को भेजा, तब दूत को अपने पास आता देख दुष्ट निर्दयी राक्षस खाने के लिए तैयार हो गया । तब दूत ने विनय के साथ राक्षस से कहा कि - भाई ! मुझे ! क्यों खाते हो? मैं तो राजा का दूत हूँ। उनका संदेशा तुम्हारे पास लेकर आया हूँ।

दूत की यह बात सुन राक्षस ने मन में यह सोचकर कि 'इसको मारने से गुरु हत्या के समान पाप लगेगा' कहा - अच्छा ! जा ! जा ! मेरे सामने से चला जा । इस प्रकार जब राक्षस ने भी दूत को न्यायविरुद्ध जान बिना मारे छोड़ दिया तब यशस्वी, गुणी, मानी और पराक्रमी तुम सरीखे सज्जन को तो दूत के लिए कभी भी न मारना चाहिए । अपने सीधे - साधे रास्ते पर जाते हुए श्रृंगाल को क्या हाथियों के मारने वाले सिंह ने भी कभी मारा है? या तुम ही इस अनोखे कार्य को करने पर उतारू हुए हो? इस प्रकार भाई धर्म ने स्वयंभू को अनेक तरह समझाया तो भी उसने उन दूतों को मार डाला और भेंट छीन ली । इसके बाद घर जाकर वे दोनों नारायण और बलभद्र सुख से भोग भोगते रहने लगे ।

अथानंतर एक दिन सभासदों से वेष्टित महाराज मधु सिंहासन पर बैठे थे, कि उन्हें आकाश से उतरता हुआ अनेक प्रकार के रत्नों से वेष्टित सुन्दर बिजली के समान चमकता हुआ एक विमान दीख पड़ा और उसमें बैठे विशालकाय देवर्षि नारद दिखे । पास में आने पर मधु ने उनका उचित आदर सत्कार किया और अपने बराबर उन्हें सिंहासन पर बैठाया । इसके बाद नारद ने मधु की कुशलक्षेम पूछी और फिर कहा - भाई मधु ! स्वयंभू बड़ा दुष्ट है, उसने तेरा बड़ा अनादर किया है। अभी हाल ही की बात है कि दो दूत तेरे

पास भेंट लेकर आ रहे थे, मार्ग में स्वयंभू ने उन्हें देख लिया और उसके बड़े भाई धर्म ने अनेक तरह रोका तो भी, दोनों दूतों को मारकर उसने भेंट छीन ली। स्वयंभू साँप के समान भयंकर है, बृहस्पति के समान विद्वान है, इन्द्र के समान क्रीड़ाप्रेमी है, सूर्य के समान प्रतापी है, मेरु के समान दृढ़प्रतिज्ञ है, और अपने घमंड में तुझे तिनके के समान भी नहीं गिनता। नारद के यह वचन सुन मधु के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह एक सिंह की गर्जना सुन जिस प्रकार दूसरा सिंह गरज उठता है, उसी प्रकार गरज उठा।

इस प्रकार लड़ाई का बीज बोकर नारद तो आकाश से जैसे आए थे, वैसे ही चले गए और इधर मधु ने क्रोध में आकर धर्म और स्वयंभू का नाश करने के लिए सेना तैयार करने का हुक्म दिया। राजा की ऐसी आज्ञा सुन बुद्धिमान वृद्ध मंत्री एकत्र हो कहने लगे - "राजन ! जय की इच्छा करने वालों को कोई काम जल्दी नहीं करना चाहिए। जो लोग समुद्र के समान गंभीर हैं, नीतिशाली और पराक्रमी हैं, वे क्षुद्रों पर तो क्रोध नहीं करते और संसार में दुर्जय समझे जाने वालों को बिना वश किए कभी छोड़ते नहीं। देखिए ! श्रृंगाल चाहे कितना भी भोंकता रहे परन्तु सिंह उसे न मार, हाथी को ही मारता है। सम्पूर्ण कार्य धीरे - धीरे ही सिद्ध होते हैं। देखिए ! शरद ऋतु में पैदा होने वाले धान्यादि उस ऋतु के आने पर ही धीरे - धीरे उत्पन्न हो सकते हैं।" मंत्रियों की यह बात सुन मानी मधु कहने लगा - "आप लोगों ने कहा वह ठीक है, परन्तु दुर्जन व्याधि और दुर्जन शत्रु शीघ्र ही नष्ट कर देने चाहिए अन्यथा अल्प स्थान पर जाने पर भी ये प्राण लेने वाले होते हैं। जिस प्रकार सूरज के उगने पर उल्लू अपने आप छिप जाते हैं, उसी प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले चमचमाते हुए चक्र को जिस समय मैं हाथ में लेता हूँ, उस समय दुर्जन मत्त बैरियों के भी पत्ते नहीं लगते।

जो पुरुष बलवान हैं, वे शत्रु वश करने के लिए साम आदि तीन नीति काम मे न लाकर केवल निग्रह करना ही उचित समझते हैं।" इस प्रकार अपने अभिप्राय की पुष्टि करते हुए उस मधु को यद्यपि अपशकुन हुए

तो भी वह बिना किसी प्रकार की शंका किए हुए रण करने चल दिया। उस समय पर्वत के समान उन्नत, मद को वर्षाने वाले और चिंघाडते हुए हाथी चल रहे थे। पृथ्वी को अपनी टाप से खोदने वाले, चित्र - विचित्र, हिनहिनाते हुए घोड़े उछलते हुए जा रहे थे और नाना तरह के तीर, भाले, बरछी आदि बांधे हुए पदाति (पैदल सेना) जा रहे थे। उस समय राजा मधु अनेक राजाओं से वेष्टित हो चल रहा था और प्रलयकालीन समुद्र के समान भंयकर जान पड़ता था। इस प्रकार सजधज के साथ जाकर उसने स्वयंभू का नगर चारों तरफ से घेर लिया। जब स्वयंभू को यह मालूम हुआ तो वह भी उसके सामने दल बल सहित जय के बाजे बजाते और शत्रुओं को कंपाते हुए आया। रणस्थल में आते ही उसने मधु से कहा - "अरे नराधम !

जो युद्ध करने के लिए आते हैं, वे क्या यों ही आकर पड़े रहते हैं फिर तू ही क्यों बिना युद्ध किए पड़ा है?" स्वयंभू की यह गर्जना सुन मधु ने उत्तर में कुछ न कह बाण बरसाने शुरू कर दिए और उनसे आकाश को अंधकारमय बना दिया, धनुष को ज्या के शब्दों से जो पर्वत प्रतिध्वनित हुए उससे मेघ गर्जने का भ्रम कर मयूर कूकने लगे। उस समय हाथियों के सवार हाथियों के सवारों से लड़ने लगे, रथ में बैठे रथ वालों पर बाण चलाने लगे। घुड़सवार, घुड़सवारों से जूझने लगे, जिनके हाथों में भाले थे, वे भालों पर चोट करने लगे, जिनके पास खड्ग थे, वे खड्गधारियों पर चलाने लगे, गदा वाले गदा वालो पर, कोड़े वाले कोड़े वालों पर, बाण वाले बाण वालों पर, हल मूसल वाले हल मूसलवालों पर अस्त्र छोड़ने लगे। इस प्रकार कायरों को भयभीत करने वाले उस घमासान युद्ध में स्वयंभू की सेना डरके भाग खड़ी हुई सो ठीक ही है मौत से भयंकर दूसरी क्या चीज है?

अपनी सेना को भागती हुई देख नारायण स्वयंभू के क्रोध का ठिकाना न रहा, वह अपने भाई के साथ प्राणपन से युद्ध के लिए तैयार हो गया और जिस प्रकार इंद्र पर्वतों को गिराता है, उसी प्रकार हाथी हथिनियों को मार - मारकर गिराने लगा और वे उस समय ऐसे मालूम पड़ने लगे, मानों

कज्जल के समान काले अंधकार को सूर्य ही अपनी किरणों से गिरा रहा हो। इस प्रकार सेना के मुख्य अंग को नष्ट होते देख मधु को अति चिंता हुई। वह सोचने लगा कि - यह दुर्जेय शत्रु मालूम पड़ता है, किस तरह जीता जाएगा? इत्यादि अनेक सोच विचार के बाद उसने शल्य बाण छोड़ा उससे स्वयंभू की सेना कीलित के समान स्थिर हो गई। इसके बाद उसने मोहित करने वाला सम्मोहन और अंधा करने वाला तामस अस्त्र छोड़ा जिससे एक साथ स्वयंभू की सेना व्यामुग्ध हो गिर पड़ी। यह देख पराक्रमी स्वयंभू को भी महाचिन्ता हो गई और वह भाई धर्म से परामर्श करने लगा कि - हमें अब क्या करना चाहिए?

यह शत्रु तो दुर्जय है, मेरु के समान निश्चल खड़ा है और इसी की जीत होगी ऐसा मालूम पड़ता है। इसने अपने बाणों से हमारी समस्त सेना बेहोश कर दी है, इसलिए विष की बेल के समान इसके नाश का उपाय भी शीघ्र ही होना चाहिए। छोटे भाई की यह बात सुन बलभद्र धर्म ने कहा - चिन्ता की कोई बात नहीं है। एक उपाय में बतलाता हूँ, उसे काम में लाओ। विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अलकपत्तन नाम का एक नगर है। उसका स्वामी महाचूल अपना मित्र है। उसको इस दुश्मन की विद्या जीतने के लिए शीघ्र ही लाना उचित है। भाई की यह बात सुन स्वयंभू ने कहा - तब तो आप बिना विलम्ब जाइए और उस मित्र को लेकर शीघ्र ही चले आइए। इसमें विचारने की कोई बात नहीं है। बस ! यह सुनकर विद्याधर के साथ विमान में बैठकर वह धर्म बलभद्र विद्याधरलोक को चल दिया।

इधर तो वह आकाश में जाने लगा और उधर नारद के मुँह से यह समाचार जान मधु ने समस्त आकाश को आकाशावरोधिनी विद्या से रोक लिया और पीछे से उसको मारने के लिए भ्रामरी विद्या भेज दी, जिससे उसने बलभद्र को समुद्र में पकड़कर पटक दिया। समुद्र में गिरते समय बलभद्र के मुँह में केवल अनादि सिद्ध 'ओम' ये ही अक्षर थे। उनके प्रभाव से समुद्र के अधिपति मणिचूल नामक यक्ष का आसन काँप गया और शीघ्र ही

उसकी देवी अम्बा ने आकर उसे अधर ही ले लिया। फिर उसका सत्कार कर उसे भेंट में एक मणि दे तट पर छोड़ दिया इसके बाद में ज्यों ही साथी विद्याधर को याद करने लगे, त्यों ही आकाश में आते वह दीख पड़ा और फिर उसके विमान में बैठकर अपने अभीष्ट स्थान को चल पड़े। मधु की छोड़ी हुई भ्रामरी विद्या इनके पीछे - पीछे चल रही थी। उसने भेरुंड पक्षी का रूप बनाकर बलभद्र को निगल लिया। बलभद्र ने भी उस दुष्ट विद्या के पेट को नख मुष्टि और पैर आदि के प्रहार से चीर डाला और ज्यों ही पर्वत पर गिरने लगा त्यों ही लाघवी विद्या से उस साथी विद्याधर ने उसे थाम कर अपने विमान में बिठा लिया एवं गंगाह्रद पर पहुँच गए।

वहाँ उन लोगों ने कुछ देर विश्राम किया, ह्रद का स्वच्छ स्वादिष्ट जल पीया और जब चलने की तैयारी करने लगे तो वही भ्रामरी विद्या फिर भी सिंही का रूप धरकर खाने के लिए आई। उस समय बलभद्र पंचनमस्कार मंत्र का जप करते हुए मजबूत मुक्कियों, लातों आदि से उसे मारने लगे। सिंही ने जब देखा कि यह इस प्रकार जीता नहीं जा सकता तो उसने उसे पकड़कर पत्थर के नीचे दबा दिया। इस प्रकार विद्या तो उसे दबाकर चली गई और उसी जगह महाचूल विद्याधर अपनी रानी के साथ क्रीड़ा करने आया था, उसने हिलती हुई वह शिला देखी। विद्या से कीलित उसको उस पराक्रमी ने अपने हाथों से उठाकर दूर किया तो नीचे बलभद्र दिख पड़े। परस्पर एक - दूसरे को परिचित देख वे प्रेम और हर्ष के साथ मिले और नाना तरह की बातचीत करने लगे।

बलभद्र ने युद्ध का सारा वृत्तांत कहा और सहायता के लिए मित्र मणिचूल को लेकर चलने लगा। मार्ग में भ्रामरी फिर आई और उस विद्याधर के सिर पर उसने गोवर्धन पर्वत उखाड़कर पटका परन्तु विद्याधर ने उसे भ्रामरी विद्या का काम समझकर उस विद्या को ही वज्र की सांकल से बांध लिया और पूछने लगा - अरी पापिनी ! तू सच - सच बता ! तू कौन है? नहीं तो तेरी जान निकाल डालूंगा। उत्तर में विद्या बोली - मैं मधु राजा से भेजी गई

भ्रामरी विद्या हूँ और बलभद्र के मारने के लिए नियुक्त हुई हूँ, परन्तु इस पराक्रमी पर मेरा कोई वश नहीं चलता । महाबाहु ! मुझे इस बंधन से छोड़ दीजिए, मैं अपनी जगह चली जाऊँगी । यद्यपि मेरी शक्ति सूर्य चन्द्र को गिराने तक ही है, परन्तु क्या करूँ, आपका मैं बाल भी बांका नहीं कर सकती । इसके बाद महाचूल ने उस भ्रामरी को तो छोड़ दिया और धर्म के साथ स्वयंभू की सैन्य में जा उतरा । वहाँ स्वयंभू को नमस्कार कर कुशलक्षेम पूछी । उसने कहा - मधु शत्रु ने तीन महाविद्या छोड़ी हैं और उनका प्रतिकार किसी से हो नहीं रहा है, इसलिये उनके नाश करने वाली महाविद्याओं को सिद्ध करने के लिए मैं जाना चाहता हूँ। विद्याधर की यह बात सुन स्वयंभू ने उसे जाने की सम्मति दे दी और शीघ्र ही वापस आने की प्रेरणा की ।

अब महाचूल वहाँ से चलकर हीमंत पर्वत पर गया और वहाँ समस्त वस्त्र उतारकर नग्न हो लाल नेत्रों वाले साँप को गले में डाल लिया, हड्डियों का मुकुट मस्तक पर धारण किया और रुण्डों की माला हाथ में ले छत्तीस भुजा वाली मानसी विद्या की साधना प्रारम्भ कर दी । अल्प दिनों में ही उसे वह विद्या सिद्ध हो गई और तब वह संग्राम में लौट आया । सो ठीक ही है - पुण्य के उदय से क्या काम सिद्ध नहीं होता है। विद्याधर महाचूल ने उस मानसी विद्या के बल से मधु की तीनों विद्यायें नष्ट कर डालीं और जब स्वयंभू ने अपना सैन्य जागृत देखा तो उसे बहुत ही जोश आ गया एवं मधु की सैन्य को तीव्र आघातो से घायल करने लगा ।

मधु ने जब उसे दुर्जय समझा तो स्वयं उसके सामने आया और नाना अस्त्र - शस्त्रों के चलाने में कुशल होने के कारण क्रोधग्नि से दीप्त हो वह अग्निबाण, जलबाण, नागबाण आदि अनेक प्रकार के बाण स्वयंभू पर छोड़ने लगा । उत्तर में स्वयंभू भी कुछ कम न था । उसने भी उनके प्रतिपक्षी बाणों से उसका जवाब दिया । जब सब तरह से मधु हार गया और स्वयंभू से उसने पार न पाई तो क्रोध में आ चक्र चलाया । चक्र पहले तो सीधा आकाश में गया और फिर उस स्वयंभू की तीन प्रदक्षिणा दे दाहिने हाथ में ठहर गया ।

सो ठीक ही है - पुण्य से क्या पदार्थ नहीं मिलता है? इस प्रकार जब चक्र व्यर्थ चला गया तो मधु को बड़ी भारी गुस्सा आई । वह मेघ के समान कड़ककर बोला रे क्षत्रियाधम स्वयंभू ! यदि तुझमें सामर्थ्य है तो शीघ्र ही चक्र छोड़ ! तू निश्चय समझ तेरा नाशकाल बहुत ही समीप है। यह सुन स्वयंभू ने कहा अरे! बुड्ढे पर, स्थूल पर, कायर पर, निरपराधी पर और स्त्रियों पर शूरवीरों की तलवार नहीं उठती इसलिये मैं चक्र चलाना तुझ बुड्ढे पर उचित नहीं समझता । इसके उत्तर में मधु ने कहा - अरे ! जो शत्रुओं को जड़मूल से उखाड़ डालने की सामर्थ्य रखते हैं वे तलवार धारण कर सकते हैं।

जिस प्रकार पृथ्वी के भार को शेषनाग ही धारण कर सकता है,(ऐसा वैदिक परम्परा मानता है।) कुएँ में रहने वाला मेढ़क नहीं । स्वयंभू ने कहा सूरज समस्त जगत् के अंधकार को नष्ट कर प्रकाश करता है परन्तु तो भी वह विवर के भीतर उजाला नहीं कर सकता इसलिये क्या उसकी महत्ता में कोई बट्टा लगता है? यह सुन मधु ने कहा - अरे! पंगु क्या मेरु पर चढ़ सकता है? समुद्र क्या छोटी - सी नाव से पार किया जा सकता है? जिस प्रकार इन दोनों बातों का होना असंभव है, उसी प्रकार तुझ क्षुद्र से मेरा जीता जाना भी कठिन ही है। स्वयंभू ने कहा - अंजनगिरि के समान उन्नतकाय हस्तियों को मारकर उनके माँस को खाने वाला मृगराज सिंह श्रृंगाल को कभी नहीं खाता अथवा घास कभी नहीं खाता । इसी प्रकार मैं भी वीरों को छोड़कर तुझ सरीखे कायर को मारना पंसद नहीं करता । यह सुन मधु बोला - हाँ हाँ ! यह तो ठीक ही है ! परन्तु रे दासीपुत्र ! जो अपने पराक्रम से समस्त पृथ्वीतल को कंपा देते हैं, वे भी इस प्रकार निर्भय हो यमराज के मुँह में हाथ नहीं देते । रे नीच !

यदि तुझमें सचमुच सामर्थ्य हो तो क्या देखता है? क्यों नहीं पाये हुए चक्र को चलाता? मधु की ऐसी कठोर बात सुन स्वयंभू से न रहा गया उसने चक्र को घुमाकर छोड़ दिया और उससे मधु के दो टूक हो गये । सो ठीक ही है जिसकी जिसके हाथ मृत्यु होनी होती है वह किसी प्रकार रुक नहीं

सकती। मानी मधु ने रौद्रध्यान के साथ प्राण छोड़े, वह पाप का फल भोगने के लिये सातवें नरक में पहुँचा और वहाँ दुःख भोगने लगा। मुध के मारे जाने से स्वयंभू चक्र का स्वामी हो गया, अब उसकी आज्ञा सर्वत्र फैल गई। भरतक्षेत्र के तीन खण्ड उसने अपने गुण और सैन्य से वश कर लिये। धर्म चक्री स्वयंभू नाना तरह के भोग भोगने लगे, वे शिष्टों का पालन और दुष्टों का निग्रह कर समस्त प्रजा को सुखी और संतुष्ट रखने लगे। उनके आठ हजार रानियाँ थी, आठ हजार मण्डलीक आर्य राजा और आठ हजार म्लेच्छ राजा उनकी सेवा करते थे। अथानन्तर कुछ काल बीतने पर स्वयंभू मृत्यु को प्राप्त हो गया और तीव्र बैर के कारण वह भी सातवें नरक में पहुँचा।

उन दोनों नारायण - प्रतिनारायणों को जो दुःख उस सातवें नरक में था उसे कविगण तो कह नहीं सकते, हाँ ! तीर्थंकर भगवान कह सकते हैं। स्वयंभू के वियोग से बलभद्र को पहले तो अति संताप हुआ और छह मास तक भाई की लाश को साथ - साथ लिये फिरते रहे फिर उन्हें काललब्धि के प्रभाव से यथार्थ ज्ञान हो वैराग्य प्राप्त हुआ।

वह तीर्थंकर विमलवाहन स्वामी के समवशरण में गये और वहाँ नमस्कार स्तुति कर भक्ति भाव से जिनदीक्षा ले मुनि हो गये। सो ठीक ही है - भाव का होना ही सबसे अधिक कार्यकारी होता है। मुनि धर्म ने अपनी शक्ति को न छिपाकर घोर तप तपा और घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान प्राप्त किया, अंत में अघातिया कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त किया। सो ठीक ही है - तप के आचरण करने से स्वर्ग तो घर के आंगन में स्थिति के समान है, राज्य, धन, रूप, यश, चक्रवर्तीपना और इंद्रपद हाथ में रखे हुए के समान हैं, कर्मों की निर्जरा क्षण - क्षण में होती है, निरोगता भव - भव में प्राप्त होती है, देव सेवक हो जाते हैं, सौभाग्यादि गुण स्वयमेव आ जाते हैं,

कामदेव के समान पुत्र होते हैं, रति के तुल्य परमसुन्दरी स्त्रियाँ आ मिलती हैं, और क्या कहें? सगर चक्रवर्ती के समान समस्त ऐहिक सुख की सामग्री तो अनायास मिल ही जाती है जबकि मोक्ष के सुख तक मिल जाते हैं।

इसलिए सज्जनों को धर्म - पुण्यादि के साधक आचरण तो करने चाहिये और जुआ, चोरी, परस्त्रीगमनादि कुत्सित कार्य सर्वथा छोड़ देने उचित हैं।

सर्गांत मंगल।

कृष्ण दास को सुखद जो, जिन्हें नमत हैं इन्द्र।
गये मुक्ति कैलाश से, ध्यावहु आदि जिनेन्द्र॥

चौथा सर्ग समाप्त हुआ ॥४॥

पाँचवा सर्ग

कर्मभूमि की आदि में, भए ज्ञानदातार ।
शिवमगद्योतक वे प्रभु, होहु सुमति करतार ।।

अथानंतर वे सर्वज्ञ भगवान विमलवाहनस्वामी समस्त आर्य देशों में धर्म का व्याख्यान करते - करते एक समय उत्तर मथुरा नगरी में पधारे । इंद्र की आज्ञानुसार बारह गव्यूति प्रमाण समवशरण कुबेर ने रचा ।

उसमें चारों दिशाओं में चार रत्नमंडित मानस्तम्भ थे, हंस, सारस अनेक मनोहर पक्षियों से युक्त सरोवर थे, पाँच वर्ण के महारत्नों से जड़ित भूमि थी, धूलीसार नामक विशाल शाल था और उसके चारों तरफ जल से भरी हुई कमलों से शोभित खाई थी, नाना तरह के फूलों से युक्त वाटिका थी, जिनमें क्रीड़ा में आसक्त देवांगनाएँ हर्ष से इधर - उधर डोलती थीं । सुवर्ण का परकोटा था, विशाल चित्त को चुराने वाली नाट्यशालाएँ थीं, जिनमें किन्नरियाँ नाचती गाती थीं । रत्नों की बनी हुई वेदियाँ थीं और तीस हजार

ध्वजादंड थे। इसके बाद उसमें चाँदी का एक कोट था और उसके चारों तरह कल्पवृक्षों का वन था। उस समवशरण में नाना मणियों से बनाया गया (जिसमें बहुत - से घर हैं ऐसा) एक किला था और उसके सामने बारह सभास्थान थे सबसे पहले मुनियों की सभा थी, उसके बाद कल्पवासिनी देवांगनाओं की सभा थी, तीसरी सभा में आर्यिकाएँ, चौथी में ज्योतिषियों की देवियाँ, पाँचवी में व्यंतरियाँ, छठी में भवनवासियों की देवियाँ, सातवीं में भवनवासी देव, आठवीं मे व्यन्तर देव, नवमी में ज्योतिषी देव, दशवीं में कल्पवासी देव, ग्यारहवीं में मनुष्य और बारहवीं सभा में पशुगण बैठे थे।

सबके बीच में एक विशाल सिंहकूर्म नाम का सिंहासन था, उस पर एक हजार आठ पंखुड़ियों से शोभयमान सुवर्णमयी कमल पर श्री १००८ विमलनाथ भगवान विराजमान थे। उस समवशरण में बीस हजार तो सीढ़ियाँ थीं, चार प्राकार थे, पाँच भित्तियाँ थी, छत्तीस गलियाँ थी, देव - देवांगनाएँ जय - जय शब्द बोल रहे थे। उस समवशरण में जो प्राकार और भित्तियाँ थीं, वे भगवान् के शरीर की अवगाहना से बारहगुणी ऊँची थीं और वेदियाँ चौगुणी थीं। भूमि से पाँच हजार धनुष ऊँचे चढ़ने पर श्रीविष्टर की शोभा देख सकते थे। साढ़े बारह करोड़ बाजों के शब्द होते थे। इस प्रकार अन्य भी अद्भुत शोभाएँ और छः ऋतुओं की आई हुई एक साथ समृद्धि को देखकर माली अत्यंत प्रसन्न हुआ और कुछ फल - फूल तोड़कर राजा मेरु और मंदर के सामने ले जाकर उपस्थित करते हुए उसने कहा - हे राजन! किन्नरोद्यान में श्रीविमलनाथ भगवान का समवशरण आया है, उनके प्रभाव से सब ऋतुएँ एक साथ फलवती हो गई हैं और अपने पुष्परूपी नेत्रों से उनकी समृद्धि को देखने के लिए एक साथ मिलकर आई हुई मालूम पड़ती हैं।

माली के मुख से श्रीजिनेन्द्र का आगमन सुन मेरु और मंदर दोनों भाइयों को परम आनन्द हुआ। उन्होंने अपने आभूषण उतार कर खुशी में माली को दे दिए। इसके बाद वे दोनों राजपुत्र त्रिलोकीनाथ भगवान की वंदना के लिए गए। अतिशय भक्ति और महाविभूति के साथ जलगंधादि से

श्रीजिनेन्द्र की पूजा की, स्तुति की और फिर नमस्कार कर मनुष्यों के कोठे में जा बैठ गये। श्रीजिनेन्द्र ने दिव्य ध्वनि से गृहस्थ और मुनियों के चरित्र का वर्णन किया और फिर तत्व, पदार्थ, द्रव्य आदि के निरूपण को करने लगे। श्री जिनेन्द्र ने कहा - यह जीव न तो किसी ने पैदा किया है और न कोई इसका नाश कर सकता है। यह अनादि से है और अनन्त काल तक रहेगा, परन्तु कर्मरूपी यंत्र के वशीभूत हो यह संसार में नाना दुःखों को भोगता हुआ घूमता फिरता है। यह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र स्वरूप है। सदाकाल जो पहले जिया हो और वर्तमान में जी रहा हो और भविष्य में भी जीवे उस ही का नाम जीव है।

व्यवहारनय से यह जीव आठ ज्ञान, चार दर्शन इस प्रकार बारह उपयोगों का स्वामी है, कर्मों का करने वाला है, अमूर्तिक होने पर भी अपनी वर्तमान देह के समान व्यापी और उसकी स्थिति तक ही एक पर्याय में रहने वाला है। अपने कर्मों का फल स्वयं भोगने वाला है। इसके तीनों कालों में चार प्राण रहते हैं। निश्चयनय से तो अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनंतसौख्य, अनंतवीर्य ये चार प्राण हैं और व्यवहारनय से मन, वचन, काय, श्वाँसोच्छ्वास, आयु, स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत ये दश प्राण हैं। उपयोग के दो भेद हैं - ज्ञान और दर्शन। चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल के भेद से दर्शनोपयोग तो चार प्रकार का है और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मनः पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमति, कुश्रुति और विभंगावधि के भेद से ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं।

प्रत्यक्ष और परोक्ष भेद से ज्ञान दो प्रकार का भी होता है। यह तो सामान्य रीति से जीव का लक्षण है, वह भी देहधारी अर्थात् अशुद्ध जीव का लक्षण है। शुद्ध जीव का लक्षण तो अनन्त ज्ञान और अनन्त दर्शन है। जिसमें तीनों लोक और अलोकवर्ती समस्त पदार्थों की समस्त तीनों कालवर्ती पर्यायें एक साथ जानी जाएँ, वह तो अनन्त ज्ञान है। वह नित्य अविनाशी शुद्ध होता है। इसी प्रकार तीनों कालवर्ती समस्त पदार्थों की समस्त पर्यायें जिससे देखी

जाएँ, वह अनन्त दर्शन है, वह भी शुद्ध और नित्य होता है। व्यवहारनय से देहधारियों के लाल, काला, श्वेत, पीला और हरा ये पाँच रंगों में से कोई न - कोई एक रंग रहता है और निश्चय नय से जीव के कोई भी रंग नहीं रहता है। व्यवहानय से यह जीव जड़ कर्म के वशीभूत हो दुःख भोगता है और निश्चयनय से कर्म रहित शुद्ध है। सामान्यतया मीठा, तीखा, कषैला, कडुआ, नुनखरा और खट्टा यह छह रस हैं और तीखे खारे को एक मान लेने से पाँच रस ही हैं। सुगन्ध दुर्गन्ध के भेद से गंध के दो भेद हैं।

सामान्यतया स्पर्श के आठ भेद हैं - स्निग्ध, रुक्ष, हल्का, भारी, ठण्डा, गरम, कोमल,कठोर। निश्चयनय से जीव बिना किसी प्रकार के बंधन से बद्ध,ज्ञानी शुद्ध, अखंड अविनाशी है यह जीव संकोच विकासशाली है, जितनी छोटी बड़ी देह को पाता है, उसी के आकार का हो जाता है निश्चयनय से इस जीव को न तो किसी प्रकार की वेदना ही होती है, न क्रोधादि कषाय तथा ह्रस्व- दीर्घ विक्रिया ही होती है और न मरण आदि ही होते हैं। परंतु व्यवहारनय से यह सात प्रकार के समुद्घात करता है - वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणातिक, तैजस, आहारक और केवल ? इस आत्मा के लोकाकाश के समान असंख्यात प्रदेश हैं। स्थावर जीव व्यालीस प्रकार के होते हैं, देव नारकी दो दो प्रकार के, तिर्यंच चौंतीस तरह के, मनुष्य नौ तरह के और विकलेन्द्रिय नौ तरह के, इस तरह कुल मिलाकर अट्ठानबे प्रकार के संसारी जीव होते हैं।

चौदह मार्गणा अथवा चौदह गुणस्थानों की अपेक्षा विचारा जाए, तो संसारी जीव के चौदह भेद भी होते हैं। एक तरह से जीवों के दो भेद भी हो सकते हैं - संसारी और मुक्त अथवा भव्य और अभव्य, ये भी दो भेद हो सकते हैं। संसारी जीव मनसहित और मनरहित के भेद से फिर दो प्रकार के भी होते हैं और फिर उनके त्रस एवं स्थावर के भेद से भी दो भेद होते हैं। सिद्ध जीव साकार और निराकार के भेद से दो तरह के भी कथंचित् हो सकते है परन्तु वस्तुतः उनमें कोई भेद नहीं है, सब समान हैं। वे सब ज्ञानावरणादि

आठों कर्मो से रहित अनन्त ज्ञानादि आठ गुणों से सहित, अन्तिम अपनी देह से कुछ कम ऊँचाई वाले और लोक के अग्र भाग पर रहने वाले हैं। जिस समय यह जीव चारों प्रकार के कर्म बंधनों को तोड़कर स्वतंत्र हो जाता है। उस समय सीधा ऊर्ध्वगमन करता है और आगे धर्मास्तिकाय के अभाव हो जाने से लोक के अग्र भाग पर ठहर जाता है। इसके सिवा अन्य जीव दिशा विदिशाओं में गमन कर भटकते फिरते हैं। इसमें संदेह नहीं है अभव्य जीवों में भी बहुत से तप तपकर ग्रैवेयक तक जाते हैं।

निगोद पाँच प्रकार के हैं और उनके अनन्तानन्त भेद हैं। अनंतानंत कालों में सिद्ध राशि से अनंतानंत गुणी निगोद राशि है। सीप, कृमि, शंख, जोंक और कौड़ी आदि दो इन्द्रिय जीव हैं। खटमल, कुन्थु, यूक (झींगुर जूँ) गोह आदि के तीन इन्द्रियाँ होती हैं। षट्पद, मच्छ, डांस, मक्खी, पतंग आदि जीव चार इन्द्रिय वाले हैं। इनके सिवा अन्य तिर्यंच, देव, नारकी और मनुष्य चाहे वे जल में रहते हैं चाहे आकाश में गमन कर सकते हैं, सब पाँच इन्द्रिय वाले हैं। इन इन्द्रियों में संसार के अनन्त कष्टों को उत्पन्न कर दुःख देने वाला एक मन ही है, क्योंकि उसके वश में न होने से ही नाना तरह के कर्मों का बंध होता है। यदि मन अपने आधीन कर लिया जाए तो निस्सन्देह मुक्ति होना कुछ भी कठिन न हो और जिन लोगों का मन अपने अधीन नहीं, चचंल है उनको संसार मिलना कुछ भी कठिन नहीं।

उग्र उपवासादि तप का करना तो बाह्य तप है और असली तप तो चंचल मन का वश करना ही है। जो कि समस्त कर्मों में प्रधान है। करोड़ों वर्षों तक बाह्य तप तपने से जो फल मिल सकता है, वही क्षणभर मन को वशकर परमात्मा के ध्यान करने से मिल जाता है। जिसने आत्मा के स्वरूप को पहचान लिया, उसी ने परम पद पा लिया, उसी ने उत्कृष्ट ज्योति प्राप्त की, उसी ने तप तपा, उसी ने श्रेष्ठ दान दिया और उसी ने वास्तविक शास्त्रों का स्वाध्याय किया। जो लोग अपनी आत्मा का शुद्ध स्वरूप तो विचारते नहीं, इधर - उधर की माया में फँसे रहते हैं, वे तपकर अपनी देह को केवल कष्ट

देते हैं, उससे अन्य कोई फल प्राप्त नहीं होता। इस प्रकार संक्षेप से जीव तत्व का वर्णन कर दिया गया। अब अजीव तत्व को कहते हैं। अजीव के पाँच भेद हैं - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इनमें पुद्गल तो मूर्तिक है और बाकी सब अमूर्तिक हैं। यह हीन अधिक होता रहता है इसलिये पुद्गल अन्वर्थ नाम का धारक है। शब्द, बंध, संस्थान, अधंकार, छाया, प्रकाश और चमक ये सब पुद्गल की ही पर्याय हैं, अन्य लोग जिस प्रकार इन्हें पृथक् - पृथक् पदार्थ ही मानते हैं, उस प्रकार नहीं हैं।

जिस प्रकार मछलियों को चलने - फिरने में जल कारण है, उसी प्रकार चारों गतियों में चलने फिरने वाले इन जीवों को और पुद्गल द्रव्य को गमन करने में जो सहायता करने वाला है, वह धर्म द्रव्य है। जिस प्रकार मार्ग में चलते हुए पथिकों को वृक्षों की छाया उदासीन कारण है, उसी प्रकार जीव और पुद्गलों को ठहराने में जो कारण है, वह अधर्म द्रव्य है। आकाश के दो भेद हैं - एक लोकाकाश, दूसरा अलोकाकाश। जीव पुद्गल आदि पदार्थों को जो रहने के लिए अवकाश दे, वह लोकाकाश है और उससे भिन्न अलोकाकाश है। पदार्थों को नवीन और पुरातन कर देने के कारण तो व्यवहार काल है और रत्न राशि के समान लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर एक - एक अणु रूप से स्थित है, वह निश्चय काल है। इसके प्रदेश भिन्न - भिन्न हैं इसलिए अकाय कहा जाता है।

एक जीव, धर्म और अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश हैं, आकाश के अनंत प्रदेश हैं और पुद्गल के संख्यात, असंख्यात और अनन्त तीनों तरह के प्रदेश हैं जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय कहलाते हैं। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर; निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्व हैं। इनमें पुण्य, पाप दो मिला देने से नौ पदार्थ हो जाते हैं। द्रव्यास्रव और भावास्रव के भेद से आस्रव के दो भेद हैं। आत्मा के जिन भावों से ज्ञानावरणादि कर्मों का बंध होता है, वे तो भावास्रव हैं और वे मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग हैं और जो ज्ञानावरणादि कर्मों का आना है,

वह द्रव्यास्रव है। द्रव्य और भाव के भेद से बंध भी दो प्रकार का है। जिन मिथ्यादि दुर्भावों से कर्म बंधते हैं, वह तो भाव बंध है और ज्ञानावरणादि कर्म तथा आत्मा के प्रदेशों का एक क्षेत्रावगाहन रूप बंध होना है, वह द्रव्य बंध है। उस बंध के चार भेद हैं – प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बंध और अनुभाग बंध । उसमें प्रकृति बंध और प्रदेश बंध तो योगों के द्वारा होते हैं, बाकी अनुभाग और स्थिति बंध कषायों से उत्पन्न होते हैं। संवर भी द्रव्य संवर और भाव संवर के भेद से दो प्रकार का है।

आत्मा के जिस भाव से कर्मों का आस्रव रुक जाए वह तो भाव संवर है और व्रत गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षादि का, आचरण एवं परीषहों के जय से जो आते हुए कर्मों का रुक जाना है, वह द्रव्य संवर है। निर्जरा दो तरह की होती है – सविपाक और अविपाक । कर्मों का फल देकर जो आत्मा से पृथक् हो जाता हैं, वह तो सविपाक निर्जरा और बिना फल दिये ही कर्मों का झड़ जाना अविपाक निर्जरा है। इनमें सविपाक निर्जरा तो प्रत्येक संसारी जीव के प्रतिक्षण हुआ करती है और अविपाक निर्जरा कभी – कभी – किसी – किसी के होती है। द्रव्य मोक्ष और भाव मोक्ष के भेद से मोक्ष भी दो प्रकार का है। उसमें जिन आत्म भावों से कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाता है, वह भाव मोक्ष है और ध्यानादि के द्वारा कार्माण वर्गणाओं का आत्मा से सर्वथा पृथक हो जाना द्रव्य मोक्ष है। जिनके परिणाम शुभ होते हैं, उनके पुण्य और जिनके परिणाम खोटे होते हैं, उनके पाप कर्मों का बंध होता है।

साता रूप सुख, श्रेष्ठ नाम, समीचीन गोत्र और शुभ आयु ये तो पुण्य के प्रभाव से प्राप्त होते हैं और असाता रूप दुःख, अशुभ नाम, असमीचीन गोत्र और नरक, तिर्यंच, आयु से पाप के प्रभाव से मिलती है। इस प्रकार हे मगधाधिपति श्रेणिक उन विमलनाथ भगवान् ने द्रव्य, तत्व और पदार्थों का स्वरूप निरूपण किया । इसके बाद वे मोक्षमार्ग का निरूपण करने लगे । मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन; सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है। निश्चयनय से जीव इन तीनों स्वरूपों में ही है, परन्तु अनादिकाल से कर्मों के वशीभूत होने

के कारण दुःख उठा रहा है। जिस प्रकार बिना दाँढ़ों के केसरी मत्त हाथियों को नहीं मार सकता, उसी प्रकार मुनि बिना श्रेष्ठ ध्यान के कर्मों का नाश नहीं कर सकते। ध्यान के चार भेद हैं – आर्त्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल। इसमें आर्त्त, रौद्र दो ध्यान सर्वथा छोड़ देने योग्य हैं। इनसे संसार बढ़ता है शेष दो धर्म्य और शुक्ल, मोक्ष सुख के देने वाले हैं, इसलिए करने में उचित हैं। स्त्री – पुत्र खाना – पीना आदि का चिंतवन तो आर्त्तध्यान है और बाँधने आदि से उत्पन्न ध्यान का नाम रौद्रध्यान हैं।

जैन सिद्धांत का पठन – पाठन, व्रतों का आचरण, भावनाओं का चिंतवन, दान और तप का आचरण धर्म्यध्यान है। संकल्प विकल्पों से रहित, शुद्ध आत्मा के स्वरूप को विचारना शुक्ल ध्यान है और उसे निर्ग्रंथ सर्वथा परिग्रहरहित मुनिगण ही कर सकते हैं। ध्यान की सिद्धि पर्वत पर, गुफाओं में, मरघट में, विवरों में, शिला पर और मठ मंदिर आदि शून्य स्थानों में होती है। पिंडस्थ, पदस्थ,रूपस्थ और रूपातीत ध्यानों को स्थिर मानकर समस्त परिग्रहों से रहित हो जाना चाहिए। नाभि कमल में स्फुरायमान ज्योति वाले, सूर्य समान देदीप्यमान आत्मस्वरूप का जो चिंतवन करता है, वह पिंडस्थध्यान है अथवा अपने स्वरूप का मस्तक में, हृदय में, गले में व हाथों में जो चिंतवन करता है, वह भी पिंडस्थध्यान है।

'अर्हं' इन दो बीजाक्षरों का वा जो 'ओम्' आदि एकाक्षरादि मंत्रों का एकाग्र चिंतवन करना है, वह पदस्थध्यान है। आठ कर्मों से रहित सिद्ध भगवान वा प्रातिहार्यादि सामग्रियों से भूषित, घातिकर्मरहित, शुक्लवर्ण के धारक श्री अर्हद् भगवान का जो चिंतवन करता है वह रूपस्थध्यान है। कामविकार, राग, द्वेष, मन, वचन, काय की मत्सरता, ममता, शरीरसंस्कार, धन – धान्य, कषायभाव और व्यापारादि से रहित, "न तो मैं ही किसी का हूँ और न मेरा ही कुछ है" इस प्रकार जो निःसंग हो 'सोऽहं' 'वह मैं हूँ' इस प्रकार चिंतवन करना, वह रूपातीत ध्यान है। जिस प्रकार शरदकालीन चन्द्रमा की चाँदनी अमृतपान के समान तुल्यप्रिय लगती है, उसी प्रकार यह निश्चल

भ्रांतिरहित ध्यान भी शीतल और सुखद मालूम पड़ता है। जो योगी इस अनुपम ध्यान का आचरण करता है, वह निश्चय से मोक्ष सुख को भोगता है, संसार उसके रहता ही नहीं है। आर्त्तध्यान से तिर्यंचगति होती है, रौद्रध्यान से नरक मिलता है, धर्म्यध्यान से स्वर्ग मिलता है और शुक्लध्यान से मोक्ष प्राप्त होता है। इत्यादि की श्रद्धा से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, सम्यग्दर्शन शुद्ध होने से कर्मों का क्षय होता है और कर्मों के क्षय हो जाने से मोक्षसुख मिल ही जाता है, यह निश्चय है। इसलिए जो लोग सुख चाहते हैं, उन्हें तत्त्वादि की चर्चा करना चाहिए, धर्म्य शुक्लध्यानों का आचरण करना उचित है। कारण अंतर्मुहूर्त पर्यंत भी श्रेष्ठ ध्यान कर लिए जाएँ तो करोड़ों कर्मों का क्षय हो जाता है। इस प्रकार केवली भगवान के कहे हुए तत्त्वोपदेश को सुनकर वे मंदर और मेरु दोनों राजपुत्र बहुत ही आनंदित हुए और श्रीजिनेंद्र को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपने महलों में गये।

पाँचवा सर्ग समाप्त हुआ ॥५॥

छठा सर्ग

बहिरंतर लक्ष्मी अधिप, कोटिचंद्रतें शीत ।
बंदौं मन वच कायकरि, आदिनाथ जगमीत ।।

अथानंतर फिर वे दोनों राजपुत्र मंदर और मेरु भक्ति भाव से उत्साहित हो, जिनेन्द्र भगवान की वंदना के लिए चल दिये और समवशरण में पहुँचकर भगवान की गद्य - पद्यमय स्तुति कर अपने स्थान पर बैठ गये। इसके बाद मेरु उठा और विनयपूर्वक भगवान से प्रार्थना की, कि - हे जगत्पूज्य, इन्द्र - धरनेंद्रों से सेवित भगवन्! मैं अपने भाई मंदर के पूर्व भव सुनना चाहता हूँ कृपाकर कहिये। उत्तर में भगवान ने भव्यों को प्रतिबोध देने वाली दिव्य ध्वनि से कहा - हे वत्स ! तूने अच्छा प्रश्न किया इसके उत्तर सुनने से असंख्य जीवों को सुख प्राप्त होगा। तू और तेरा भाई मंदर दोनों ही मोक्षगामी जीव हैं। अतएव सावधान होकर सुनो -

इसी जंबूद्वीप सम्बन्धी सुमेरु की पश्चिम दिशा में विदेह नामक क्षेत्र है। उसमें सीतोदा नाम की एक नदी है और उसके दोनों तटों पर सौ महाचैत्यालय विराजते हैं। उस नदी के उत्तर तट पर गंधमालिनी नाम का एक देश है। उस देश में वीतशोका नाम की नगरी है, जो सदा आते हुए - देवांगनाओं से सुशोभित रहती है। उस नगर के चारों तरफ खाई परकोटे हैं। उसका राजा किसी समय वैजयंत था और उसकी रानी का नाम सर्वश्री था। जो कि साक्षात् लक्ष्मी सरीखी जान पड़ती थी। उन दोनों के दो

पुत्र उत्पन्न हुए थे और उनका नाम संजयंत और जयंत रखा गया था। एक दिन विहार करते हुए तीर्थंकर स्वयंभू वहाँ आए और उनसे धर्म का व्याख्यान सुन वैजयंत तथा उनके दोनों पुत्रों को वैराग्य हो गया, जिससे वे दिगंबर दीक्षा ले मुनि हो गए। घोर तप तपने के कारण मुनिराज वैजयंत को घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने से केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। उस समय चारों निकाय के देव उन सर्वज्ञ की पूजा करने के लिये आए। उनमें धरणेंद्र का वैभव देख मुनि जयंत ने अग्रिम भव में धरणेंद्र होने का निंदित निदान बांधा और उसके अनुसार वे मर कर धरणेंद्र हो गए।

जयंत के बड़े भाई संजयंत किसी समय महामनोहर पुरी वीतशोका के भीमदर्शन नामक मरघट (शमशान) में सात दिन का योग कर प्रतिमा योग से विराजमान थे और राजा विद्युद्दंष्ट्र अपनी प्राणवल्लभाओं के साथ भद्रशाल वन में मनमानी क्रीड़ा कर अपने गगनबल्लभ नगर को लौट रहा था, कि अचानक ही उसकी दृष्टि मुनिराज संजयंत पर पड़ी। उन्हें देख उसके हृदय में पूर्व जन्म का बैर जाग उठा। वहाँ से उन्हें उठा उसने भरतक्षेत्र के दक्षिण वैताढ्य पर्वत के किसी वरुण नामक शिखर पर लाकर रख दिया, जिस स्थान पर हरिद्वतीय , चंद्रवेगा , गजवती , कुसुमवती , और सुवर्णवती इन पाँच नदियों को संघट्ट हुआ है,

विद्युद्दंष्ट्र ने सांयकाल के समय मुनिराज को वहीं छोड़ दिया और अपने नगर चला आया। प्रातः होते ही मुनिराज को मारने के लिए उसने एक ढोंग रचा और लोगों में प्रसिद्ध कर दिया कि - विद्याधरों ! आज रात्रि को स्वप्न में मैंने विस्तीर्ण शरीर का धारक एक राक्षस देखा है, वह नियम से हमारा क्षय करने वाला है, इसलिये उसके प्रति यही कर्त्तव्य है, कि जब तक वह हमारा क्षय करे उसके पहले ही हम उसे यमराज की गोद में पहुँचा दें। विद्युद्दंष्ट्र के ऐसे वचन सुन विद्याधरो कों विश्वास हो गया। वे अपने - अपने शस्त्र लेकर मुनि सजयंत के पास गये और उन्हें राक्षस जान मार गिराया। परंतु मुनिराज अपनी शांति से बिल्कुल विचलित न हुए। वे शुद्ध आत्मा के

ध्यान में लगे ही रहे इसलिए उन्हें उस समय केवलज्ञान के साथ - साथ मोक्षपद प्राप्त हो गया। सो ठीक ही है - मन को वशीभूत करने वाले सज्जनों के विघ्न भी उत्सव हो जाते हैं। जिस प्रकार तिलों में से तेल, म्यान से तलवार, दूध से घी पृथक् किया जाता है, उसी प्रकार, उस समय उनकी निर्मल आत्मा शरीर से पृथक् कर दिया गया।

मुनि संजयंत उस समय मायारहित, अतींद्रिय सुख का अनुभव करने लगे और जिस जगह एक सिद्ध में अनन्त सिद्ध विराजते हैं वहीं, विराजने लगे। अब तो मोक्षकल्याणक मनाने के लिए देव देवेंद्र अपने - अपने वाहनों पर चढ़कर आने लगे और उनका गुणगान करने लगे। उस समय जयंत का जीव धरणेंद्र भी आया और अपने भाई की आकृति और विद्याधरों कृत उपसर्ग विचारकर अति क्रुद्ध हुआ, उसने उसी समय नागपाश से उन लोगों को बांध लिया। महाक्रोध से लाल नेत्र कर वह भयप्रद वचनों को कहने लगा। उसने कहा - अरे मूर्ख विद्याधरों ! तुम लोगों ने मेरा मदरहित निर्मल ध्यानस्थ भाई क्यों मार डाला? उसने तुम लोगों का क्या अपराध किया था। इस समय मेरे भाई को मारने से तुमने अपराध किया है इसलिए तुम सबको नागपाश के वज्र प्रहार से मार डालूँगा।

काक को मारने वाले पुरुष को काक जब अपनी चोंचों से घायल कर डालते हैं, तब मुझ सरीखे पुण्यवान किस प्रकार बैरी को देख सकते हैं? उन कुकर्मी विद्याधरों को नाना प्रकार के त्रास देकर उस धरणेंद्र ने सोचा कि इन सबको या तो समुद्र में जाकर डुबो दूँ या पहाड़ के नीचे पटक दूँ, या वज्र से मारकर दिशाओं में बलि दे दूँ अथवा जिस प्रकार इन लोगों में मेरे भाई को शस्त्रों से मारा है, उसी प्रकार शस्त्रों से इनके भी खंड - खंड कर दूँ। धरणेन्द्र का ऐसा व्यवहार देखकर दुःखित विद्याधर स्वस्थ हो नम्रतापूर्वक आदि से अंत तक सब वृत्तांत कहकर बोले - हम लोग बिल्कुल अपराध रहित हैं। हमें तो विद्युद्दंष्ट्र दुष्ट ने ठग लिया इसलिए पाप में प्रवृत्त हुए। जिस प्रकार चन्द्रमा या सूर्य के सामने तारा कोई चीज नहीं होता, और जिस प्रकार मेरु पर्वत के

सामने पर्वतों का सामान्य ढेर (गंडशैल) अति क्षुद्र होता है, उसी प्रकार आप सरीखे शक्तिशाली के सामने हम क्षुद्र हैं। जिस प्रकार देवमंदिर बिना शिखर के और बगीचा बिना केले के पेड़ों से शोभित नहीं होते, उसी प्रकार न्याय के बिना पुरुष की भी शोभा नहीं होती । इसलिए हे देव ! आप धर्माधर्म को जानने वाले हैं, न्याय मार्ग को देखकर जो अपराधी हैं, उसे दंड दीजिए क्योंकि समझदार (पंडित) लोग न्याय का ही अनुसरण करते हैं।

यदि आप समर्थ होकर बिना विचारे इच्छानुसार कार्य करेंगे तो कीजिए, उसका भी प्रतीकार नहीं है, कारण देव तो निरंकुश होते ही हैं। विद्याधरों की ऐसी नम्रतापूर्ण प्रार्थना सुन धरणेंद्र ने उन्हें तो छोड़ दिया और केवल विद्युद्दंष्ट्र को, उसके पुत्र, स्त्री, भाई, बन्धू सहित बांध लिया एवं उन्हें समुद्र में पटकने की तैयारी करने लगा । इतने में आदित्याभ नाम का लांतव स्वर्ग का देव उससे आकर बोला - हे धरणेंद्र ! इसने जो अपराध किया है; उसे क्षमा कर मेरे आग्रह से इसे छोड़ दो । तुम सरीखे अतुल बलशालियों को क्षुद्र पुरुष पर क्रोध नहीं करना चाहिए ! देखो ! सिंह ईर्ष्या करने वाले श्रृंगाल को कभी नहीं मारता । पहले आदिनाथ भगवान के समय में तुम्हारे वंश के लोगों ने इन विद्याधरों को असंख्य विद्याएँ दी थीं ,

इसलिए पहले जिस प्रकार दूध से सींचकर बड़े किए गए विषवृक्ष को भी नहीं काटते, उसी प्रकार इनको भी नष्ट नहीं करना चाहिए । आदित्याभ की यह बात सुनकर धरणेंद्र ने कहा - भाई ! तुम्हें इस दुष्ट की कार्यवाही नहीं मालूम है इसलिए ऐसा कह रहे हो । इस पापी ने तपस्वी शांत मेरे बड़े भाई संजयंत को बिना अपराध के मार डाला है इसलिए यह अवश्य मारने योग्य है। आपको मुझे नहीं रोकना चाहिए । उत्तर में आदित्याभ ने कहा - मैंने तुमसे व्यर्थ याचना की क्योंकि यांचाभंग हो जाने पर मान नहीं रहता, मान न रहने से पुरुष तृण के समान नीच समझा जाता है, लोक में निंदनीय होता है और असमर्थ होने से कुछ उपकार अपकार न कर सकने के कारण चित्रित पुरुष के समान हीन समझा जाता है। ऐसे मानहीन पुरुषों को जिस

प्रकार बत्ती बुझ जाने पर दीपक को प्रकाश छोड़ जाता है, उसी प्रकार लक्ष्मी भी छोड़ जाती है। जिस प्रकार बुद्धिरहित पुरुष को प्रतिभा तिलांजलि दे देती है, उसी प्रकार मानरहित पुरुष को स्वाभिमान भी छोड़ जाता है। इससे विपरीत जिस प्रकार गुरु को विद्यार्थी और गुणी पुरुष को कुलीन स्त्री स्नेह से पसंद करती है उसी प्रकार लक्ष्मी भी मानी (प्रतिष्ठित) पुरुष को आदर के साथ वरती है। परन्तु धरणेंद्र तुम शिष्ट पुरुष हो इसलिए तुमसे किया गया मेरा यांचाभंग भी अधम पुरुष से की गई सफल याचना से कहीं अच्छी ही है।

सर्गांत मंगल

जिस महापुरुष ने परमतप तपकर मोक्षलक्ष्मी को पा लिया, जिसके चरण कमलों की देवों ने आकर सेवा की और जिसको मुनि भी सेवते हैं, वह हमारी (भव्य लोगों की) रक्षा करें।

छठा सर्ग समाप्त हुआ ॥६॥

सातवाँ सर्ग

जगपालक पुण्यद सुभग, जिन्हें नमत हैं देव ।
अघनाशक श्रीमान् जिन, करूँ तुम्हारी सेव ।।

अथानन्तर आदित्याभ ने धरणेंद्र से कहा - भाई ! मेरे युक्तियुक्त वचनों को तुम सुनो, शल्य के समान भव - भव दुःख देने वाले इस बैर को करने से कोई लाभ नहीं। इससे जीव सदा परस्पर एक - दूसरे का घात किया करते हैं। इस अपार संसार में भ्रमण करते हुए विद्युद्दंष्ट्र क्या तेरा भाई नहीं हुआ है? यहाँ न तो कोई बंधु है, न कोई बैरी है और न कोई उपकारी वा अपकार करने वाला है। सब अनेक बार पिता, पुत्र, स्त्री, माता, स्वजन, परिजन हुए हैं। वस्तुतः देखा जाये तो जितने भी जीव शत्रु दिख पड़ते हैं, वे सब माता - पिता और भाई हैं। पूर्व जन्म में तुम्हारे भाई संजयंत ने अपराधी विद्युद्दंष्ट्र को महाक्रोध कर दंड दिया था, उसी बैर के वशीभूत हो उस विद्याधर को जातिस्मरण हो जाने से तुम्हारे भाई संजयंत को दुःख दिया है।

इसी जन्म में इसने ऐसा नहीं किया है बल्कि गत चार जन्मों से यह तुम्हारे भाई को मारता चला आया है। इस जन्म में तो इस विद्युद्दंष्ट्र को मैं उपकारी समझता हूँ, जिससे उपसर्ग सहकर यह मुनि मुक्ति पधार गये। यदि कोई पापी जीव किसी का अपकार करे और उस अपकार से हित हो जाए तो बुद्धिमान उसे अपकारी की जगह उपकारी ही समझते हैं। तिरस्कृत होकर भी

बुद्धिमान कभी विकार को प्राप्त नहीं होते । जिस प्रकार चन्दन छिन्न - भिन्न होकर भी सामने वालों को सुगन्धित ही करता है। जिस प्रकार अगुरु जलाने से अपने श्रेष्ठ गुणों का ही प्रकाश करता है, उसी प्रकार साधु पुरुष दुर्जनों से दुःखित किये जाने पर भी अपने समता गुण को कभी नहीं छोड़ते देखो ! जिस प्रकार ईख ज्यों - ज्यों पेली जाती है, त्यो - त्यों मीठा रस देती चलती है। उसी प्रकार बुद्धिमान सज्जन प्राणनाश होने पर भी अपने हृदय में विकार नहीं लाते । इसलिए धरणेंद्र ! तुम अब इस बैर को यहीं रहने दो नहीं तो भला बताओ ? पूर्व बैर से जो दुःख उत्पन्न हुआ है, उसका क्या प्रतीकार हो सकता है? आदित्याभ का यह वचन सुन धरणेन्द्र ने पूर्व बैर की कथा पूछी । उत्तर में आदित्याभ बोला - एक लाख योजन विस्तृत जम्बूद्वीप में धनुष के समान आकृति का धारक भरतक्षेत्र है।

उसमें महा मनोहर सिंहपुर नाम का एक नगर है। उसका राजा किसी समय सिंह के समान पराक्रम का धारक सिंहसेन था और उसकी स्त्री का नाम रामदत्ता था । उसके वेदज्ञ उत्तम ब्राह्मण श्रीभूति नामक मंत्री था जो कि लोगों में अपने सत्य वचन के लिये प्रसिद्ध था । एक दिन उसने लोगों को दिखलाने के लिये प्रतिज्ञा की कि यदि मैं कभी झूठ बोलूँगा तो अपना गला काट डालूँगा । इसी बात की पुष्टि में उसने अपने गले में एक छुरी (छोटी कटारी या तलवार) बांध ली और बहुत ही कम बोलने लगा । अब तो उसकी और भी प्रसिद्धि को गई । यहाँ तक कि राजा ने प्रसन्न हो, उसका नाम सत्यघोष रख दिया। पद्मखंड नगर में सुदत्त नाम का एक सेठ रहता था । वह बड़ा ही धर्मात्मा और गुणी था ।

उसकी सेठानी का नाम सुमित्रा था और उनके भद्रमित्र नाम का पुत्र था । एक दिन वह बहुत से सेठ पुत्रों के साथ क्रीड़ा करने के लिये बगीचे में गया । वहाँ अवसर पाकर सेठ पुत्रों ने उससे कहा - मित्र ! जो वैश्य पुत्र होते हैं, वे व्यवसाय कर अपनी आजीविका चलाते हैं, परन्तु तुम बिना किसी प्रकार के रोजगार के घर में ही रहते हो । हम लोग रत्नद्वीप को जा रहे

हैं, इसलिये तुम्हें भी साथ चल देना चाहिए। देखो ! जो पुत्र कुछ धन तो पैदा नहीं करता और केवल खर्च ही करता है, उससे माता - पिता को कोई लाभ नहीं होता, जिस प्रकार कि उग्र तप तपने से भी क्रोधी मुनियों को कोई लाभ नहीं होता। सेठ पुत्रों की यह बात सुन भद्रमित्र ताली पीटकर हँसा और बोला - भाई ! यह क्या? दरिद्र के साथ मुनि की कहीं उपमा दी जा सकती है? यह सुन सेठ पुत्र बोले - भाई ! इस विषय की कथा है।

हमने उसे मुनिराज के मुँह से सुना है। उसे तुम सुनो, तुम्हें हमारी बात का निश्चय हो जाएगा। समुद्र के तट पर स्तवकग्लुंछ नाम का नगर है, उसका स्वामी किसी समय ऐरावण था। उसके छः हजार रानियाँ थी, पाँच सौ वीरसेन आदि पुत्र थे। उन सबको शिकार खेलने का शौक था, वे रण करने में चतुर थे। उस राजा के प्रयाण करते समय एक लाख तो भेरी बजती थी और उतने ही पटह शब्द करते चलते थे। जिस समय वह सिंहासन पर बैठता था वह इन्द्र, शेषनाग अथवा मेरु के समान शोभित होता था। विजयार्द्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी में अलकापुरी नाम का एक नगर है, उसका राजा महाकच्छ था और रानी का नाम दामिनी था। उन दोनों के रूप लावण्य की खानि प्रियंगुश्री पुत्री थी।

एक दिन यौवन से भूषित, उसको देखकर राजा को चिंता हुई और वह सोचने लगा कि यह किसको देनी चाहिए? उसने उसी समय एक ज्योतिषी को बुलाया। उससे स्तवकग्लुंछ नगर के अधिपति को उसका भावी पति जाना, अतएव उसको अपने नगर में लाने का उपाय किया। राजा महाकच्छ ने छोटे कानों का एक मायामयी घोड़ा बनाया और उस पर चढ़कर स्तवकग्लुंछ नगर को चल दिया । महाकच्छ जब उस नगर के पास पहुँचा तो वह आश्चर्य में डूब गया। वह सोचने लगा कि यह कैलाश पर्वत है या हिमालय अथवा देवनगर है? इसके बाद जब हजार स्तंभ तोरणों से युक्त,बीस लाख यौद्धाओं से रक्षित पूर्व द्वार पर पहुँचा? तो उसने उसके भीतर घुसना अपनी शक्ति के बाहर समझा इसलिए वह वहाँ से लौटकर जंगल में क्रीड़ा

करने लगा। वीरसेनादि राजपुत्र उस समय वहाँ क्रीड़ा के लिए आए थे। जब उन्होंने उसे वहाँ देखा तो कौतुक से पूछा आप कौन हैं? कहाँ रहते हैं और यह घोड़ा किसका है? उत्तर में विद्याधर ने कहा - मैं अलकापुरी से आया हूँ। यह मेरा घोड़ा है। इसके बाद वीरसेन ने कहा - घोड़ा तो देखने में नटखट मालूम होता है। यदि इसे थोड़ी देर के लिए दे दो तो इसकी पटुता देख लें और पंसद आ जाने पर मूल्य देकर खरीद भी लेंगे।

विद्याधर ने इस बात से सहमत हो अपना घोड़ा दे दिया। परन्तु ज्योंही वीरसेन उस पर चढ़ा घोड़े ने उसे पटक दिया। इसके बाद अन्य पुत्र भी चढ़े परन्तु सबकी समान ही दशा हुई। किसी के हाथ टूट गये और किसी के पैर टूट गये। जब यह खबर ऐरावण को लगी तो वह वहाँ आया। वह घोड़े दुर्धर जान उस पर चढ़ गया। इस राजा ने पहले कैलाश पर्वत पर विराजमान श्री आदिनाथ भगवान को प्रतिदिन आठ हजार बार साष्टांग नमस्कार किया था, उसी के पुण्य प्रताप से यह घोड़ा कीलित हुए के समान इसको गिरा न सका। महाकच्छ ने जब इसका यह पराक्रम देखा, तो वह बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसने विनयावंत हो अपनी कन्या विवाहने की बात कही।

ऐरावण ने उत्तर में कहा कि - इक्ष्वाकु वंश के लोग स्त्री के लिए दूसरी जगह नहीं जाते, इसलिए कुलक्रम का उल्लंघन कर मैं भी तुम्हारे यहाँ नहीं जा सकता। हाँ ! यदि तुम उसे यहाँ ले आओ तो विवाह कर सकता हूँ। ऐरावण के ऐसे वचन सुन महाकच्छ अपने नगर को आया और कन्या लेकर स्तवकग्लुंछ नगर को लौट ही रहा था कि एक अलकापुर का ही वासी वज्रसेन नाम का विद्याधर प्रियंगुश्री के रूप की प्रशंसा सुन उस पर आसक्त था। वह उस कन्या को हरण करने के लिए महाकच्छ के पीछे - पीछे आ. पहुँचा और ऐरावण के नगर के समीप ही उन दोनों में मुठभेड़ हो गई। ऐरावण ने जब रणभेरी का शब्द सुना, तो वह वहाँ आया और वज्रसेन को जीतकर प्रियंगुश्री के साथ विवाह कर आनन्द से रहने लगा। वज्रसेन अपमानित हो, तपस्वी हो गये और एक हजार वर्ष बाद स्तवकग्लुंछ नगर में

आए। एक दिन ध्यान में लीन उन मुनि को देखकर ऐरावण के लड़कों ने यह कहते हुए कि "इसने पहले हमारे पिता के साथ युद्ध किया था अब बचकर कहाँ जाएगा", उन्हें खचेड डाला। बस ! कर्मोदय से मुनि की शांति भंग हो गई, वे क्रोध के आवेश में आ गए इसलिए वामस्कन्ध से एक अग्नि का पुतला निकला और उससे राजा प्रजा समस्त प्राणी जलकर भस्म हो गये। इसके बाद मुनि को भी उस पुतले ने जला डाला और मरकर वे नरक पहुँचे।

भाई भद्रमित्र ! इसीलिए क्रोधी मुनि और अर्थोपार्जन न करने वाले पुरुष दोनों को बराबर उपमा दी है, क्योंकि दोनों ही अपने - अपने धन का नाश कर देते हैं। सेठ पुत्रों की बात का भद्रमित्र पर असर हो गया। उसने पिता के पास आकर मित्रों के साथ धन उपार्जन करने के लिए रत्नद्वीप जाने की इच्छा प्रगट की। पिता ने उत्तर में कहा बेटा ! हमारे पास अपरिमित धन है, तुम्हें उसके लिए परदेश जाने की क्या आवश्यकता है? तुम एक ही तो मेरे लड़के हो और सो भी अभी छोटी उम्र है, तुम्हें भेजकर मैं क्या योगी हो पृथ्वी पर घूमूंगा? इस प्रकार पिता ने यद्यपि उसे निषेध किया तो भी वह उनके वचनों की कुछ भी परवाह न कर समुद्र के रास्ते रत्नद्वीप को चल दिया।

वहाँ रहकर वह सिंहपुर में आया और बहुत - सी भेंट ले सत्यघोष मंत्री से आदर के साथ मिला। इसके बाद उसने मंत्री से पूछा कि यदि आपका स्नेह हो तो मैं यहाँ ही सदा निवास के लिए आ जाऊँ। उत्तर में सम्मान के साथ सत्यघोष ने कहा - हाँ ! हाँ !! तुम अपने माता - पिता को शीघ्र ही यहाँ ले आओ। मंत्री के वाक्य से संतुष्ट हो भद्रमित्र सात बहुमूल्य रत्नों को उसके (सत्यघोष के) हाथ में देकर पद्मखंडपुर को चला आया। वहाँ से उसने माता - पिता, स्त्री - पुत्र, पशुधन - धान्य आदि सबको साथ में लिया और शीघ्र ही सिंहपुर लौट आया। इसके बाद जब उसने सत्यघोष से अपने सातों रत्न वापस मांगे तो वह क्रोध से लाल आँखें कर बोला - रे पापी ! तूने मेरे हाथ में कब रत्न दिए थे? निश्चय आज तेरा अंत आ गया है, जो मेरे नाम दोषरोपण कर रहा है। उत्तर में भद्रमित्र ने रत्नों के नाम, रूप, रंग आदि

बताकर कहा कि वे रत्न मैंने रत्नद्वीप से लाकर सौंपे थे। इसके बाद सेवकों ने यह कहकर कि 'जिनका बहुत धन नष्ट हो जाता है,वे पागल हो जाते हैं' उस भद्रमित्र को मुक्के - घूसों से मारकर अर्धचंद्र (गलबायीं) दे, घर से बाहर निकाल दिया। अपना द्रव्य इस प्रकार अपहरण होता देख भद्रमित्र महादुःखित हुआ। वह शोक से रोता - पीटता राजदरबार में पहुँचा सत्यघोष भी वहाँ पहुँचा और यह कहकर कि 'धन नष्ट हो जाने से पागल हो यह बकता फिरता है' अपनी सत्यता प्रकट की, यहाँ तक कि उस लोभी नीच सत्यघोष ने अपनी निर्दोषिता प्रगट करने के लिए राजा के सामने मिथ्या शपथ भी खा डाली।

अब तो भद्रमित्र बिल्कुल ही हताश हो गया। वह प्रतिदिन प्रातःकाल की होन (बेला) में पेड़ पर चढ़कर करुण क्रंदन करने लगा और चिल्ला - चिल्लाकर कहने लगा कि बिना अपराध इस दुष्ट ब्राह्मण ने मुझे ठग लिया। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किसके सामने जाकर फरियाद करूँ? हे सत्यघोष ! सिंहसेन राजा के प्रसाद से तेरे क्या नहीं है? छत्र और सिंहासन छोड़कर समस्त राज्य ही तेरा है। हे ब्राह्मण ! झूठ बोलने से धर्म, यश, बड़प्पन आदि सब गुण चले जाते हैं, आश्चर्य है कि यह सब जानकर भी इस बड़े भारी पाप को क्यों तू कर रहा है? मेरी तेरे साथ दुश्मनी नहीं है तो भी न मालूम सदाचार को तिलांजलि देकर तू मेरा धन क्यों हजम कर रहा है? एक दिन रात्रि के पश्चिम भाग में यह ब्राह्मण इस प्रकार चिल्ला रहा था कि उसे सुनकर गुणवती रानी ने अपने मन में सोचा - यह पागल नहीं मालूम पड़ता क्योंकि सदा यह एक ही बात कहकर चिल्लाता है इसलिए इसका ठीक - ठीक न्याय मे करूँगी। इसके बाद राजा से कहा कि आज आप रणवास में रहें, मैं इस बात की जाँच करूँगी।

प्रातः काल होने पर वह चतुर रानी उठी और एकांत में जब वह बैठी थी, उसी समय सत्यघोष ब्राह्मण आया। रानी ने उसे वहीं रोककर सम्मान के साथ बिठा लिया और उसके साथ जुआ खेलना प्रारम्भ कर दिया।

इसके बाद हँसते हुए रानी ने मंत्री से कहा - यदि मैं तुम्हें जीत लूँगी तो बोलो क्या दोगे? उत्तर में उसने कहा कि यदि मैं हार गया तो घोड़ा, कपड़े, गहने आदि बहुत से पदार्थ आपको दूँगा। यह सुन रानी बोली - वाह ! यह तो मेरे पास ही बहुत - से हैं, इनका मैं क्या करूँगी? हाँ ! एक बात है। यदि तुम अपनी नाम की खुदी हुई मुंदरी (मुद्रिका) और यज्ञोपवीत (जनेऊ) दे दो तो ठीक हो। मंत्री, रानी की चालाकी पहचान न सका।

वह इसी शर्त पर राजी हो गया और अभाग्यवश बेधड़क खेलते - खेलते रानी से हार खा गया। जीत जाने पर रानी ने उस मंत्री के जनेऊ और मुंदरी दोनों ले लिये। इसके बाद प्रसन्न हो, उसने निपुणमती नामक एक दासी बुलाई और उसके हाथ में उन दोनों चीजों को देकर कहा कि - तू सत्यघोष के घर से यह निशान दिखलाकर भद्रमित्र के रत्नों का पिटारा ले आ। दासी चतुर थी। उसने रानी की आज्ञानुसार काम करके ला दिया। रानी ने उस पिटारे को राजा सिंहसेन के सुपुर्द किया और वह उसे लेकर सभा में गया। राजा ने उन रत्नों में कुछ रत्न मिला दिये और उस वैश्य से कहा कि - भाई ! तू इनमें से अपने रत्न ढूँढ ले। भद्रमित्र सच्चा था, वह अपने रत्न खूब पहचानता था इसलिए उनमें से उसने अपने रत्न चुनकर उठा लिये।

यह देख राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा - "यह कोई बड़ा ही सदाचारी सत्यवादी पुरुष है। यह बेचारा इस दुष्ट के द्वारा ठग लिया गया है। सत्यघोष महापापी, धर्मभ्रष्ट, सत्यवादी, निर्दयी, दंड देने योग्य महाशठ है।" यह सोचकर राजा ने सैनिक बुलवाये और उन्हें क्रोध से सत्यघोष को दंडित करने के लिए तीन आज्ञाएँ दीं। एक तो इसका समस्त धन छीन लो, दूसरे वज्रमुष्टि नामक मल्ल से तीस घूसे लगवाओ और तीसरे, तीन कांसे के बर्तन ताजे गोबर से भरकर इसे खिलाओ राजा की आज्ञा पाकर यम के समान निष्ठुर उन भृत्यों ने भी वैसा ही किया। सत्यघोष राजा के इस व्यवहार से बहुत ही असंतुष्ट हुआ। वह राजा से बैर बांधकर आर्त्तध्यान से मरा और खजाने में सांप उत्पन्न हुआ।

इसलिए कहते हैं, कि चोरी कभी नहीं करना चाहिए। अन्याय से दूसरे का धन ले लेना ही चोरी हैं। इस चोरी से सज्जनता नष्ट हो जाती है। विश्वास चला जाता है, मित्र - बन्धु बाँधवों तक पर विपत्ति आती है, जिस प्रकार दावानल से लता भस्म हो जाती है, उसी प्रकार चोरी करने से अनेक गुणों की सत्ता से उपार्जित निर्मल कीर्ति बात की बात में नष्ट हो जाती है। देखो ! शास्त्रों को जानते हुए भी पापी मूर्ख ब्राह्मण ने चोरी की आदत पड़ जाने से रत्न हरण किए और इसीलिए वह क्षणभर में मंत्रीपद से च्युत हो, तीव्र दंड से दंडित हुआ। इतना ही नहीं, उसने भविष्य में भी पाप को पैदा करने वाली तिर्यंच गति पाई।

राजा सिंहसेन ने संतुष्ट हो भद्रमित्र को श्रेष्ठी पद दिया। सो ठीक ही है शुभ भाग्य के उदय से क्या - क्या नहीं होता और उस राजा ने सत्यघोष की जगह धम्मिल्ल को मंत्री बना लिया। अथानंतर आसना नामक भयानक जंगल में कांतार पर्वत पर एक दिन वरधर्म नामक मुनिराज पधारे और उनकी वंदना करने के लिए सेठ भद्रमित्र भी गया मुनिराज से धर्म का उपदेश सुनकर, वह निरंतर दान करने लगा। यह देख उसकी माता उसे बार - बार रोकने लगी। परंतु वह उत्कंठापूर्वक दान देता ही रहा।

उसकी इस दानवीरता से भाट लोग तक कीर्ति गाने लगे। सो ठीक ही हैं - जो दानी है उनके सामने धन क्या चीज है? जो विरक्तचित्त हैं, उनके लिए मोह क्या कर सकता है? परन्तु उसकी माता को यह बात सहन नहीं हुई, वह क्रोध से मरकर उक्त आसना जंगल में व्याघ्री उत्पन्न हुई सो ठीक ही है - रौद्रध्यान के वशीभूत हो यह जीव व्याघ्र, मार्जार (बिल्ली), सर्प आदि योनियों में पैदा होता है। इसलिए बुद्धिमानी को रौद्रध्यान सर्वथा छोड़ देना चाहिए। एक दिन भद्रमित्र उसी वन में क्रीड़ा के लिए गया था, उसकी माँ के जीव व्याघ्री ने उसे खा डाला और वह मरकर स्नेह के वश रामदत्ता के उदर में सिंहचंद्र नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उसके छोटा भाई पूर्णचंद्र हुआ और वे दोनों राजा सिंहसेन को अतिप्रिय थे और इस तरह पुत्र स्त्री के साथ

वह आनन्द से भोग भोगता था। एक दिन वह सिंहसेन खजाना देखने गया था और रत्नादि देखकर ज्योंही बाहर निकला था, कि क्रोध से लाल आँखें कर पूर्व जन्म के बैर से, उस सत्यघोष के जीव (साँप) ने काट लिया जिससे तत्काल ही वह राजा पृथ्वी पर गिर पड़ा। विष दूर करने के लिए देश - देशांतरों से हजारों वैद्य बुलाए गए और जब कोई उस विष को दूर न कर सका तो साँपों का मर्दन करने वाला मंत्रवादी बुद्धिमान गारुडदंड नाम का सपेड़ी (साँपों का मर्दन करने वाला) बुलाया गया।

उसने मंत्र के बल से दिशा - विदिशाओं से अनेक सर्प बुलाए और अग्निकुण्ड में प्रवेश कर शुद्ध होने की उन्हें आज्ञा दीं। गारुडदंड की आज्ञानुसार समस्त सर्प तो उस अग्निकुण्ड में से, जल के समान तैरकर पार हो गए , केवल सत्यघोष का जीव अगंधन ही बच गया। यह देख सपेड़ी ने उससे कहा - या तो इस राजा को विषवेदना से मुक्त करो अथवा इस अग्निकुंड में प्रवेश कर जाओ। अगंधन को राजा से महाद्वेष था, उसने राजा को छोड़ने की अपेक्षा अग्नि में भस्म हो जाना ही अच्छा समझा इसलिए अग्निकुण्ड में घुसकर अपने प्राण छोड़े और कीलक वन में चमर मृग उत्पन्न हुआ। सिंहसेन मरकर सल्लकी वन में मदोन्मत्त अशनिघोष नाम का हाथी हुआ। पति के मर जाने से रामदत्ता को महादुःख हुआ।

वह मोह की उत्कटता से छाती कूट - कूटकर विलाप करने लगी। जब रानी का शोक कुछ शांत हो गया तो दांतमती और हिरण्यमती नाम की दो आर्यिकाएँ उसके यहाँ आईं। रामदत्ता को उन्होंने सद्धर्म का उपदेश दिया, द्रव्य क्षेत्र आदि का यथार्थ स्वरूप समझाया। जिससे उसने उन्हीं के समक्ष शुद्ध संयम धारण कर लिया। पिता के मर जाने पर सिंहचंद्र तो राजा हुआ और छोटा भाई पूर्णचंद्र युवराज पद पर अभिषिक्त हुआ। इस प्रकार वे दोनों सुख से राजभोग कर रहे थे, कि एक दिन सिंहचंद्र के मन में सहसा माता -पिता के वियोग का दुःख उमड़ आया। इसी समय भाग्यवश पूर्णचंद्र नामक मुनिराज का आगमन सुना। सिंहचंदु भक्तिवश उनकी वंदना के लिये गया

और मुनिराज से धर्म का उपदेश सुनकर विरक्त हो गया। अपने छोटे भाई पूर्णचन्द्र को राज्य देकर उन ही मुनिराज के समीप दीक्षा ले मुनिव्रत धारण कर लिया। सिंहचंद्र मुनि हो उत्साह के साथ तप तपने लगे और उसके प्रभाव से उनके चारण ऋद्धि उत्पन्न हो गई। इसके बाद तप के प्रभाव से उनके मनः- पर्ययज्ञान का भी उदय हो गया जिससे ढाई द्वीप में सूक्ष्म स्थूल समस्त पदार्थों को जानने लगे। एक दिन मनोहर वन में सिंहचन्द्र मुनिराज विराजमान थे, रामदत्ता उनकी वंदना के लिये गई,

और पुत्र स्नेह से स्तुति करते हुए बोली हे मुनिराज ! तुम धन्य हो, तुमने युवावस्था में राज्य छोड़ तप धारण किया है। सिंहसेन के कुलरूपी कमल के तुम सूर्य हो, विद्वान रूपी चकोरों के लिए निर्मल पूर्णचंद्र हो और स्वयं संसार से पार होने वाले हो। इसके बाद उसने मुनिराज से पूछा - महाराज ! तुम्हारा छोटा भाई पूर्णचंद्र धर्म छोड़कर राज्य भोग रहा है। वह सुख की आकांक्षा से क्या कभी धर्म ग्रहण भी करेगा? प्रभो ! अपने ज्ञानचक्षु से यथार्थ जानकर कहिये। उत्तर में मुनिराज ने कहा - वह निश्चय से धर्म ग्रहण कर आत्मकल्याण करेगा।

रामदत्ता ने जब उसका कारण पूछा तो मुनिराज ने कहा - जिस दिन वह अपने पूर्व जन्मों का वृतान्त सुनेगा, उसी दिन विरक्त हो जाएगा और वह वृत्तांत इस प्रकार है - इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में एक कौशल देश है। उसमें वृद्ध ग्राम में मृगायण नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम मधुरा था। उन दोनों के बुद्धिमती वारुणी नाम की एक पुत्री थी। कालक्रम से उसके पिता की मृत्यु हो गई और वह मृगायण श्रीऋषभनाथ भगवान की भक्ति के वश हो देवताओं से निर्मित बारह योजन विस्तृत अयोध्या नगरी के अधिपति अतिबल के लक्ष्मी के समान सुन्दर सुमिता रानी से हिरण्यवती नामक पुत्री हुई। सो ठीक ही है, जो अति विषयासक्त होते हैं। वे कर्म विपाक से मरकर स्त्री होते हैं। कालक्रम से हिरण्यवती युवती हुई और उसके समस्त शरीर में लावण्य झलक उठा।

अथानन्तर स्वर्गतुल्य सुन्दर पोदनपुर नामक नगर में पूर्णचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। वह महासुंदर समस्त गुणों की खान था। अतिबल ने उस हिरण्यवती का विवाह उसके साथ कर दिया। और वे दोनों दिन - रात अनुपम भोग भोगने लगे। कालक्रम से उस मधुरा ब्राह्मणी का जीव तो इन दोनों के रामदत्ता नामक पुत्री हुई। सो देख ! पति, माता हो जाता है। स्त्री, पुत्री हो जाती है, पुत्री, पुत्र हो जाता है। इस प्रकार संसार की धिक्कार ने योग्य विचित्र गति है।

भद्रमित्र नाम का वह सेठ मरकर मैं तेरे सिहचंद्र नाम का पुत्र हुआ जो इस समय मुनि अवस्था में हूँ और पूर्व भव में तेरी जो वारुणी पुत्री थी, वही मरकर मेरा छोटा भाई पूर्णचंद्र उत्पन्न हुआ है। तेरे पिता जो पोदनपुर के राजा पूर्णचंद्र थे, वह भद्रबाहु मुनिराज के समीप दीक्षित हो मुनि हो गये और सर्वावधिज्ञान के स्वामी हमारे गुरु हैं। आर्यिका दांतमती के समीप तेरी माता भी दीक्षित हो गई है। तेरा पति सिंहसेन सर्प के काटने से मरकर अशनिघोष नामक हाथी हुआ है। वह मत्त हो, घूम रहा था और मुझे मारने के लिए दौड़ा तो मैंने उसे पूर्व भव का सब सम्बन्ध बतलाकर संबोधा, जिससे उसे ज्ञान की प्राप्ति हो गई और उसने मुझसे अणुव्रत धारण कर लिये।

अब तो उसकी परिणति बदल गई, वह संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो, मास, पक्ष सप्ताह आदि के उपवास आदि व्रतों का पालन करने लगा, सूखे पत्ते चबाने लगा और इस तरह जलरहित तालाब की तरह वह शक्तिहीन निर्बल हो गया। अब पूर्व जन्म का बैरी जो सत्यघोष का जीव मरकर सर्प हुआ था फिर मरकर चमर मृग हुआ था।

वही मरकर इस वन में कुर्कुट सर्प हुआ। एक दिन वह हाथी एक महीने का उपवास कर पारणा के दिन सारिणी नदी के तट पर जल पीने घुसा कि दलदल में फंस गया। व्रतों से इस हाथी का शरीर निर्बल तो था ही, वह निकल न सका, इतने में पूर्व जन्म का बैरी वह सर्प क्रोध से इसके माथे पर चढ़ गया और इसे काट खाया। हाथी ने उस समय समाधिमरण किया और

उसी विषवेदना से मरकर सहस्रार नामक स्वर्ग के रविप्रभ विमान में श्रीधरदेव हुआ, सिंहसेन का मंत्री धम्मिल मरकर उसी जंगल में हाथी का मित्र बंदर हुआ था, सो उसने जब हाथी को सांप से दंशा हुआ देखा तो उसने उस साँप को भी मार डाला और मरकर वह (साँप का जीव) तीसरे नरक में पहुँचा। हाथी का जीव ज्योंही उपपाद शय्या से उठा, वह स्वर्ग संपदा देखकर आश्चर्य मे पड़ गया, वह सोचने लगा यह विमानों की पंक्ति क्या है? यह स्त्रियाँ भी कौन हैं? देव को भ्रान्त देखकर देवागंनाओं ने कहा - नाथ ! यह स्वर्ग है, यह आपका वासस्थान है, हम आपकी नियोगिनी देवियाँ हैं।

उनकी यह बात सुन उस देव ने अवधिज्ञान नेत्र से उक्त बातों की यथार्थता जानी और साथ ही अपने हाथी के जन्म को भी विचारा। व्रत का फल स्वर्गसंपदा देख उसने मन ही मन व्रताचरण को बहुत सराहा और समुद्र में नौका के समान संसार से स्वयं और पर को पार उतारने वाले ज्ञानी गुरुओं की बार - बार प्रशंसा की। वह देव असंख्य द्वीप समुद्रों में देवियों के साथ क्रीड़ा करने लगा। उसका शरीर चार हाथ ऊँचा था, सात धातुओं से रहित था, उसकी आयु अठारह सागर की थी, अठारह हजार वर्ष बाद वह मानसिक आहार करता था, अठारह पक्ष बाद श्वांस लेता था, उसके पद्म लेश्या थी और जिनेन्द्र भगवान की वंदना आदि कर अपना काल आनन्द से बिताता था। देखो ! व्रत की महिमा अपरंपार है, इससे नाना तरह के इन्द्रिय सुखों की खानि स्वर्गसंपदा तो मिल ही जाती है परन्तु, अनन्त सुख का घर मोक्ष तक प्राप्त हो जाता है इसलिए यथाशक्ति सबको व्रताचरण करना चाहिये।

सातवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।। ७।।

आठवाँ सर्ग

परम ज्योति सर्वज्ञ जिन, आदिनाथ भगवान ।
मुनिजन वंदत चरण युग, दीजै मुझे शुभ ज्ञान ।।

अथानंतर श्रृंगालवान् नामक व्याध ने उस मृत हाथी को देखा, तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने उसके माथे से मोती निकाले और चमकते हुए विशाल दाँत उखाड़ डाले । उन सबको लेकर वह सिंहपुर में गया । वहाँ धनमित्र सेठ के हाथ वे बेच दिए। उस सेठ ने वे दाँत और मोती पूर्णचंद्र राजा को भेंट किए। पूर्णचंद्र ने दाँतों से तो अपनी खाट के चार पाए बनवाए और गजमुक्ताओं का हार बनाकर पहन लिया। देखो ! संसार की ऐसी ही विचित्र गति है।

इसलिए हे माता ! इस संसार की दशा में किसे संतोष हो सकता है और सुत स्त्री धन - धान्य आदि किसके हुए हैं? इस संसार में कोई किसी का प्यारा नहीं है, एक अपना मतलब ही प्यारा है। इस संसार में जन्म - मरण के अनन्त दुःख हैं और यह बिल्कुल सार रहित है। मुनिराज इस प्रकार संसार का स्वरूप कहकर चुप हो गए, तो रामदत्ता संसार शरीर और भोगों से विरक्त हो अपने छोटे पुत्र को संबोधने के लिए चल दी और वहाँ जाकर पुत्र को यथार्थ बोध कराने के लिए उपदेश देने लगी । जब उसे बहुत देर तक भी वैराग्य न आया तो मुनिराज ने जो पूर्व भव कहे थे उसने वे सब कह सुनाए । अब तो पूर्णचंद्र की आँखें खुल गई । वह संसार की अनित्यता समझ

सम्यग्दृष्टि हो, राज्य पालन करता हुआ रहने लगा। रामदत्ता ने मरते समय निदान किया कि मेरा और इन लोगों का पुनः संयोग हो। वह मरकर महाशुक्र स्वर्ग के भास्कर विमान में भास्कर नाम का सोलह सागर की आयु का धारक पद्मलेश्या वाला देव हुआ। वह सोलह हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार करता था, सोलह पक्ष बाद एक बार श्वासोच्छ्वास लेता था, वह चार हाथ ऊँचा था, उसकी प्रभा अरुण थी और देवांगनाओं के साथ असंख्य द्वीप समुद्रों में क्रीड़ा करता फिरता था।

पूर्णचंद्र भी धर्म के प्रभाव से वैडूर्य विमान में वैडर्यू नाम का देव हुआ। सिंहचंद्र मुनि भी अति दुर्धर तप तपकर ऊर्ध्व प्रीतिंकर विमान में अहमिंद्र हुए। उनकी इकत्तीस सागर की आयु थी, उन्हें छठे नरक तक अवधिज्ञान था, उसकी शुक्ललेश्या थी, डेढ़ हाथ ऊँचा शरीर था और वह देव सदा जिनेन्द्र भगवान के गुणों का ध्यान किया करता था। इसी पृथ्वी पर विजयार्द्ध पर्वत की दक्षिण श्रेणी में धरणी (पृथ्वी) के तिलक के समान धरणी तिलक नामक एक नगर है। उसका स्वामी आदित्यवेग विद्याधर था। उसकी स्त्री सुलक्षणा के गर्भ से महाशुक्र विमान से चयकर रामदत्ता का जीव भास्कर नाम का देव पुत्री हुआ और उसका नाम श्रीधरा रखा गया। उसी पर्वत पर अलका नाम की एक और दूसरी नगरी है। उसका राजा कामदेव के समान दर्शक नाम का था।

उस दर्शक के साथ पिता ने उस श्रीधरा का विवाह कर दिया। नाना इंद्रियभोग भोगते हुए उन दोनों के वैडूर्य विमान का अधिपति देव पूर्णचंद्र का जीव चयकर पुत्री हुआ और उसका नाम यशोधरा रखा गया और वह भास्करपुर के अधिपति सूर्यावर्त राजा को विवाही गई। परस्पर यथेष्ठ भोग भोगते हुए उन दोनों के सिंहसेन का जीव श्रीधरदेव चयकर पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम रश्मिवेग रखा गया। किसी समय राजा सूर्यावर्त मुनिचंद्र मुनि से यतिधर्म का व्याख्यान सुन विरक्त हो गया और दीक्षित हो मुनि हो गया। पति के वियोग से दुःखित हो यशोधरा भी विरक्त हो गई और वह भी

आर्यिका के व्रत पालने लगी । अपने जामाता और पुत्री दोनों को दीक्षित सुन श्रीधरा भी विरक्त हो गई और वह भी गुणवती आर्यिका के समीप व्रत ग्रहण कर आर्यिका हो गई । राजसिंहासन पाकर रश्मिवेग अत्यन्त सुशोभित होने लगा, वह अपने पूर्वकृत पुण्य का प्रसन्नचित्त हो फल भोगने लगा । एक दिन रश्मिवेग सिद्धकूट जिनालय की वंदना के लिए गया था, वहाँ उसे हरिचंद्र नामक चारणऋद्धि के धारण मुनिराज के दर्शन हो गए । वह भक्तिभाव से हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गया और वे मुनिराज भी हितकर धर्म का उपदेश देने लगे । वे कहने लगे - जिस प्रकार कुएँ में से रस्सी द्वारा जल निकालते हैं, उसी प्रकार नरक तिर्यंच गतियों में से जो प्राणियों का उद्धार करता है, वह वास्तव में धर्म है और वह सिवा जिनधर्म के दूसरा कोई नहीं है।

इस संसार में कोई भी पदार्थ नित्य नहीं है जिसे प्रातः काल देखते हैं वही शाम को नही पड़ता, नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार घोड़े के सींग नहीं होते उसी प्रकार संसार में इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोगजन्य दुःख से लोग दुःखी हो, शोक तो करते हैं परन्तु उस शोक से उस पदार्थ की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु दुष्कर्मों का बंध होता है, जिसके कारण नरकगति की प्राप्ति होती है और फिर संसार में घूमना पड़ता है। इस संसार में स्त्री, पुत्र, धन - धान्य आदि किसी के भी नहीं है, मरने पर ये सब यहीं रह जाते हैं, साथ कोई नहीं जाता । वे लोग ही धीर हैं, वे ही सुखी हैं, वे ही पंडित हैं और वे ही सुंदर हैं जो दश प्रकार के भोग भोगकर भी मोक्ष की इच्छा से तप तपते हैं।

जो लोग सदा स्त्रीसुख में आसक्त हैं, लोभी - मानी हैं, वे अपवित्र कीचड़ से व्याप्त गड्ढे में पड़े हुए शूकर के समान निंदनीय और असत्य पदार्थ में प्रेम करने वाले हैं। जो लोग असत् सुख को छोड़कर परम ज्योति परमात्मा का ध्यान करते हैं, वे अंतमुर्हूत में कर्मों को नष्ट कर मोक्ष सुख पा लेते हैं। इस प्रकार मुनिराज के उपदेश को सुनकर उस रश्मिवेग ने मन में राज्य की अनित्यता और अपना सच्चा हित समझकर सम्यग्दर्शन के साथ - साथ मुनिव्रत धारण कर लिए । पापों के निरोध करने वाले तप को

तपते हुए उन्हें बहुत शीघ्र चारणऋद्धि की प्राप्ति हो गई। वे मुनिराज विहार करते हुए एक दिन कांचन नामक गुहा में ध्यान का उपयुक्त स्थान देखकर विराजमान हो गए और पर्यंकासन मांडकर स्थिर चित्त हो सकल मलरहित परमात्मा का ध्यान करने लगे। उन्हें उस अवस्था में देखकर दो आर्यिकायें वंदना के लिए आई और वे श्रीधरा तथा यशोधरा थीं।

सत्यघोष का जीव पापी मर कर जो नरक में गया था, वह वहाँ से निकला और इसी वन में नाना योनियों में भ्रमण कर विशालकाय का धारक अजगर हुआ। पूर्व जन्म के बैर से उस पापी ने उन मुनिराज और दोनों आर्यिकाओं को निगल डाला जिससे आराधनाओं का ध्यान करते हुए मुनिराज मरकर तो कापिष्ठ स्वर्ग के अर्कप्रभ विमान में अर्कप्रभ नाम के देव हुए और वे दोनों मरकर तो रुचक विमान में अणिमादि विभूति से भूषित देव हुईं। उन तीनों की चौदह सागर प्रमाण आयु थी, पाँच हाथ (अरत्नि) ऊँचा शरीर था और सौंदर्य तथा भोगों की निधि थी। वह पापी अजगर भी आयु के अंत में मरा और पाप से पंकप्रभा में नारकी उत्पन्न हुआ, जिससे असंख्य असह्य दुःखों को भोगने लगा। इसी जंबूद्वीप के प्रसिद्ध भरतक्षेत्र में एक मनोहर चक्रपुरी नाम की नगरी है। उसका राजा अपराजित था, उसके सुंदरी नाम की रानी थी। उसके गर्भ में वह सिंहचंद्र का जीव ऊर्ध्वग्रैवयेक से चयकर आया और चक्रायुध नाम का पुत्र हुआ। उसके साथ पाँच हजार राजकन्यायें विवाही गईं। कापिष्ठ स्वर्ग से चयकर अर्कप्रभ देव, उसके चित्रमाला रानी से वज्रायुध नामक बुद्धिमान पुत्र हुआ। पृथ्वीतिलक नगर के अधिपति अतिवेग विद्याधर के प्रियकारुणिका रानी के गर्भ में श्रीधरा का जीव कापिष्ठ स्वर्ग से चयकर पुत्री उत्पन्न हुई और उसका नाम रत्नमाला पड़ा।

एक दिन पिता ने उसे विवाह के योग्य समझकर वज्रायुध कुमार के साथ विवाह किया और वे परस्पर इंद्रियभोग भोगने लगे। यशोधरा का जीव कापिष्ठ स्वर्ग से चया और वह इनके रत्नायुध नाम का गुणी पुत्र पैदा हुआ। इस प्रकार सब शुभ इष्ट संयोग पाकर मनमाने सुख भोगने लगा। सो

ठीक ही है – जब शुभकर्म का उदय होता है, तब संपत्ति मिल ही जाती है। एक दिन राजा अपराजित ने पिहितास्रव मुनिराज से धर्म का उपदेश सुना और वह चक्रायुध को राज्य दे दीक्षित हो मुनि हो गया। राज्य पाकर चक्रायुध प्रजा की सब तरह रक्षा करने लगा। एक दिन वह सिंहासन पर बैठा था और दर्पण में मुँह देख रहा था, कि इतने में उसे सिर पर सफेद बाल दिखलाई पड़ा। उसे देखकर चक्रायुध ने सोचा –

अहा ! यह मुझे बुलाने के लिए यमदूत आ गया है। हा ! मेरी सारी आयु व्यर्थ ही चली गई, मैंने स्वर्ग मोक्ष देने वाले धर्म का कुछ भी आराधन नहीं किया। बस ! इस प्रकार संसार शरीर भोगों से विरक्त हो उस चक्रायुध ने वज्रायुध पुत्र को तो राज्य दिया और स्वयं पिता के पास जाकर दीक्षित हो गया। मुनि हो वह कभी तो नदी के तट पर तप तपने लगा, कभी भयंकर वन में ध्यान करने लगा, और कभी पहाड़ की चोटी पर खड़े हो घोर परीषह सहने लगा। वज्रायुध भी विरक्त हो गया और वह भी रत्नायुध पुत्र को राज्य दे पिता से दीक्षित हो मुनि हो गया। मुनि चक्रायुध अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते – करते सर्वथा शुद्ध हो परमात्मा हो गये।

मुनि वज्रायुध गर्मियों में पहाड़ पर, हेमंत में नदी के तट पर, वर्षा में वृक्षों के नीचे, तप तपते आत्मध्यान करने लगे। अथानंतर रत्नायुध राज्य पाकर विषय भोगों में अनुरक्त हो गया। एक दिन उसका पट्टहस्ती, मनोहर वन में गया था, वहाँ वज्रदंत नामक मुनि आए थे और उन्होंने लोकानुयोग धर्म का उपदेश दिया था। उसे सुनकर हाथी को पूर्वजन्म की याद आ गई, जिससे वह अपनी बार – बार निन्दा करने लगा। उसने सोचा – हा मैंने पूर्वजन्म में असंख्य पाप किए थे, उन्हीं के उदय आने से मैंने यह तिर्यंच गति पाई है। इसके सिवा उसने उसी चिन्ता में खाना – पीना भी छोड़ दिया है। सो ठीक ही है – सत्संगति से भव्यों को सुफल फलता है। देखो ! वसंत ऋतु की संगति से काली कोकिल भी कैसा शब्द करने लगती है। हाथी की वैसी दशा देख राजा को बड़ी ही व्याकुलता हुई। वह उसका कारण मंत्री और वैद्यों से

पूछने लगा। उन लोगों ने भी जैसी बात सुनी थी, उसी तरह कहा कि राजन! इस हाथी को शरीर की तो कोई व्याधि है नहीं। इसे किसी मुनिराज से धर्म उपदेश सुनकर जाति स्मरण हो आया है, इसलिए यह शुद्ध ही घृतादि से युक्त भोजन करेगा, अन्य फलादिक नहीं। वैद्यों की यह बात सुन शुद्ध आहार बनाकर जब हाथी के सामने रखा गया तो उसने वह खा लिया। यह देख रत्नायुध को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वह उसी समय मनोहर वन गया और वंदना कर अवधिज्ञानी उन मुनिराज से हाथी का समस्त वृत्तांत और भोजन न करने का असली कारण पूछने लगा।

उत्तर में मुनिराज ने कहा – राजन सावधान हो सुनो। इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में धनधान्य से पूर्ण छत्रपुर नाम का नगर है। उसका राजा शत्रुओं से अजेय प्रीतिभद्र था, उसके सुन्दरी नाम की सुन्दर स्त्री थी। उनके प्रीतिंकर नामक गुणों की खान एक पुत्र था। उसके मंत्री चित्रमति के कमला स्त्री से उत्पन्न विचित्रमति नाम का पुत्र था। एक दिन वे दोनों पुत्र क्रीड़ा करने के लिए वन मे गए थे। वहाँ उन्होंने धर्मरुचि नामक मुनिराज को देखा और वे वंदना कर मुनिराज के सामने बैठ गए। उनमें से प्रीतिंकर ने गृहस्थ धर्म का स्वरूप और कर्त्तव्य पूछा। उत्तर में मुनिराज ने कहा धर्म के जानकारों को पाँचों तिथियों में प्रोषध करना चाहिए और ब्रह्मचर्य धारण करना उचित है। देवपूजन, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान – ये छः कार्य भी गृहस्थों को करणीय हैं।

यदि इनके करने की शक्ति न हो तो फिर मौन धारण करना चाहिए और वह मौन सात प्रकार का है अर्थात् वमन, मैथुन, स्नान, भोजन, मलमोचन, सामायिक और जिनपूजन इन सात स्थानों में मौन धारण करना उचित है। यह मौन नित्य है, इसको धारण करने से ज्ञानावरणादि कर्मों का उदय नहं। होता है। एक नैमित्तिक मौन भी होता है और उसे विधिपूर्वक धारण करना चाहिए। इसके बाद कुमार ने फिर पूछा कि – स्वामिन! इस व्रत का पहले किसने आचरण किया है और उससे उसे क्या फल मिला है? मुनिराज ने

उत्तर दिया – इस जंबूद्वीपस्थ भरतक्षेत्र के कौशल देश में कौशांबी नगरी है। उसका राजा हरिवाहन था, शशिप्रभा रानी थी और उनके सुकौशल पुत्र था। जो बड़ा ही बुद्धिमान था। पूर्व पुण्य के प्रभाव से उसने अल्प समय में ही समस्त जैन आगम का अध्ययन कर लिया था। युवावस्था आने पर यद्यपि राजकन्याओं के साथ विवाह कर दिया गया था, तो भी वह उनका संग न करता था। यह देख माता – पिता के चित्त में बड़ी भारी चिन्ता हुई और भविष्य में वंशवृद्धि होने की संभावना न देख दुःख मनाने लगे।

एक समय उस नगर के बगीचे में सोमप्रभ यतीश्वर आये थे। वनपाल के मुँह से उनका आगमन सुन वह हरिवाहन उनकी वंदना के लिए गया। वंदना कर धर्मोपदेश सुना और फिर अपने पुत्र के विषय में पूछा कि – महाराज ! मेरा पुत्र राजनीति जानता नहीं, दिनरात विद्याभ्यास में लगा रहता है और स्त्रियों का संग नहीं करता। कृपा कर इसका कारण कहिए। उत्तर में मुनिराज बोले – इसी देश में नरकूट नाम का विशाल नगर है। उसके राजा का नाम राणक था। उसी नगर में तुंगिल नाम का एक गृहस्थ रहता था और सती आज्ञाकारिणी उसकी तुंगिला नाम की स्त्री थी। अशुभ मूल नक्षत्र में उन दोनों के तुंगभद्रा पुत्री उत्पन्न हुई और पूर्व जन्म में उपार्जित पापकर्म के उदय से माता – पिता और सहोदर सब मर गए।

वह पापिनी भिक्षावृत्ति से अपना पेट भरने लगी। इस प्रकार जब वह आठ वर्ष की हो गई तो लकड़ी बेच – बेचकर अपना पेट भरने लगी। एक दिन लकड़ी लेने वन में गई थी कि वहाँ पिहिताश्रव नामक अवधिज्ञानी मुनिराज को उसने बहुत लोगों से वेष्टित देखा। भक्तिभाव से नम्र हो वह पास आई और हाथ जोड़कर बैठ गई। धर्म का उपदेश सुनकर मुनिराज से उसने कहा – महाराज ! मैंने ऐसा कौन सा पूर्वजन्म में पाप किया है जिसके प्रभाव से मैं इस प्रकार के दुःखिनी हुई हूँ? उत्तर में मुनिराज ने कहा – बेटी ! दुःख मत कर। यह जीव पाप के प्रभाव से ही दुःख भोगता है। यह सुन तुंगभद्रा ने कहा – स्वामिन ! निश्चय से मैंने पाप किया है। कृपाकर अब आप

ऐसा व्रत बतलाइए जिससे मेरा पाप विलीन हो जाए । अवधिज्ञानी उन मुनिराज ने उसे मौनव्रत धारण करने का उपदेश दिया और उसको भोजन, वमन, स्नान, मैथुन, मलमोचन में तो नित्य और निमित्तविशेष हो जाने पर नैमित्तिक मौन धारण करने के लिए कहा, साथ ही उसकी विधि भी इस प्रकार बतलाई - पौष कृष्ण एकादशी के दिन सोलह प्रहर का मौनसहित प्रोषध करे। उस दिन हाथ का इशारा, हुंकार, मुख का इशारा, कास, खाँसी, हूँ हूँ शब्द, दाँत मीचकर बोलना, हँसना, आँखों का इशारा, शरीर हिलाकर अभिप्राय प्रगट करना और दिन या रात को सोना ये काम न करने चाहिए।

सोलहों पहर जिनालय मे रहना चाहिये । पुत्री ! यह व्रत आचरण कर इससे तेरे दुष्कर्मों का नाश होगा । मुनिराज की आज्ञा सुन इस तुंगभद्रा ने मौनव्रत ले लिया और वह अपने घर चली गई । विधिपूर्वक उसने व्रत को पाला मरते समय पंचनमस्कार मंत्र का जाप करते - करते प्राण छोड़े। वही यह तेरे पुत्र सुकौशल हुआ । हे राजन् ! यह इसी भव में तप तपकर मोक्ष जाएगा । अपने पुत्र के विषय में उक्त बात सुन राजा हरिवाहन को भी वैराग्य हो गया । वह अपने पुत्र को राज्य दें उन पिहितास्रव के समीप ही दीक्षित हो दिगंबर हो गया ।

हरिवाहन की इस विरक्ति को देखकर सौ राजा भी विरक्त हो गये सो ठीक ही है - शत्रुओं के जीतने वाले धीर वीरों के ऐसे ही प्रशंसनीय कार्य होते हैं। राजा हो, सुकौशल मंत्रियों की प्रेरणा से राज्य तो करने लगे परंतु शास्त्र के अभ्यास को छोड़कर स्त्रियों से बात भी न करते थे । एक दिन मंत्री ने अपना श्रुतसागर नाम का पुत्र बुलाया और एकांत में उससे कहा - यह सुकौशल मूर्ख राजनीति से अनभिज्ञ है इसलिए किसी उपाय से उसे शीघ्र ही मार डाल । तू प्रौढ़ है इसलिए मैं तुझे तो राजा बना दूँगा और में तेरा मंत्री बनकर रहूँगा । इस तरह यह राज्य अपना ही हो जाएगा । अपने पिता की स्वामी से द्रोह करने वाली बात सुनकर श्रुतसागर ने अपना माथा ठोंका और राजा के समीप जाकर एकांत में अपने पिता की कुल बातें ज्यों की त्यों कह

दी। मंत्रीपुत्र की बातों से सावधान हो सुकौशल ने मंत्री को अपने नगर और देश से बाहर निकाल दिया। एक दिन बिजली पड़ने से मरे हुए दो हंस उस राजा ने देखे और इससे वैराग्य हो गया। श्रुतसागर मंत्रीपुत्र को उसने राज्य दिया और अपने पिता से दीक्षा ले मुनि हो गया। मतिसागर मंत्री जो देश से निकाल दिया गया था उसने अपनी शठता के वश निदान किया कि - सुकौशल ने मुझे अपने राज्य से निकाल कर मेरा अहित किया है इसलिए मैं इसे जान से मार डालूँगा। आयु के अंत में मरकर वह मौद्गल पर्वत पर सिंह हुआ।

एक दिन वे दोनों मुनि उसी पर्वत पर आकर पहुँचे और योग धारण कर विराज गये। इतने में वह सिंह आया और पूर्व के बैर से क्रुद्ध हो उन दोनों मुनियों को नख, दाँतो से विदार कर खाने लगा। उन मुनिराजों का ध्यान उस समय शुद्ध था, वे क्षपकश्रेणी का आरोहण कर केवलज्ञानी हो गये और अंतर्मुहुर्त में ही मुक्त हो सिद्ध हो गये। इसलिए कहता हूँ कि - हे वत्स ! नित्य और नैमित्तिम दोनों प्रकार का मौन धारण करना मुक्ति का प्रदान करने वाला है। यह व्रत वहुत ही सरल है तो भी विशाल फल को देने वाला है। मुनिराज का उक्त उपदेश सुन उन प्रीतिंकर और विचित्रमति दोनों ने मौन व्रत धारण करने का नियम लिया और नगर को लौटना चाहते ही थे कि हरिणी के साथ मैथुन करते हुए हरिण को सिंह से झपटा हुआ देखा। बस ! अब क्या था? उन दोनों को उसी समय वैराग्य हो गया।

वे सोचने लगे - जिस प्रकार हरिणी के साथ भोग करते हरिण को इस सिंह ने झपटकर अपने मुँह का ग्रास बनाया है, उसी प्रकार स्त्रियों के साथ इंद्रियसुख भोगते हुए हम लोगों को यमराज क्या अपने मुँह का कवल न बनावेगा? इसके बाद उन धर्मरुचि मुनिराज के पास ही वे अंतरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर मुनि हो गये। उनमें से मुनिराज प्रीतिंकर को तप के प्रभाव से क्षीरस्रावी ऋद्धि हो गई। एक दिन वे दोनों विहार करते - करते अयोध्या नगरी के वन में आये। उनमें से मंत्रीपुत्र विचित्रमति तो उपवास धारण कर वन में ही रह गये और राजपुत्र प्रीतिंकर नगर में आहार

के लिए गये। अपने घर चर्या के लिये आये हुए मुनि प्रीतिंकर को देखकर बुद्धिषेणा गणिका हाथ जोड़ नमस्कार कर विनय से बोली - मुनिराज ! मैं निंदनीय कुत्सित हूँ, मेरा कुल दान देने के अयोग्य है। इसलिए आप सरीखे, तपस्वी के योग्य यहाँ आहार विधि नहीं बन सकती।

जिस कुल में शराब, मांस, अनाचार सेवन स्वप्न में भी नहीं देखे जाते, उसी जगह आपकी आहारविधि बन सकती है क्योंकि जो मांसभक्षी हैं, वे दोनों आश्रमों से भ्रष्ट होने के कारण अनाचारी व्याध के समान केवल जंगली समझे जाते हैं। इसके बाद उस वेश्या ने नीच गोत्र और कुलादिक में उत्पन्न होने के कारण पूछे, साथ ही साथ यश रूप आदि किस कारण से प्राप्त होते हैं? यह भी पूंछा। उत्तर में मुनिराज ने कहा - मद्य मांस आदि के छोड़ने से और ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने से उच्चकुल और उच्चगोत्र में जन्म होता है तथा कीर्ति और रूप की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार उस गणिका को उपदेश देकर मुनि प्रीतिंकर वन को चले गये। उनको देरी से आया देख साथी विचित्रमति ने पूछा कि - भाई ! इतनी देर तक तुम कहाँ रहें? मोक्ष की इच्छा करने वाले तपस्वियों को तो सदा वन में ही रहना उचित है। विचित्रमति की इस बात के उत्तर में प्रीतिंकर ने उस बुद्धिषेणा का कुल वृत्तांत कह डाला जिसे सुनकर उन्हें संतोष हो गया। दूसरे दिन जब विचित्रमति आहार के लिये गये, तो वे भी उसी बुद्धिषेणा के घर में घुस गये। जब गणिका ने मुनि को देखा तो पहले दिन के समान, उनको भी नमस्कार कर यथार्थ बात कह सुनायी परन्तु वह मूर्ख विचित्रमति उसके साथ कामकथा करने लगा।

वह बोला - हे सुन्दरी ! हे मृगलोचने ! हे गौरांगि ! हे प्रगल्भे ! तू धर्म पूछकर क्या करेगी? यह यौवन गुजर जाएगा, नियम से बुढ़ापा आयेगा इसलिये इस समय बिना काम सेवन किये तेरा यह शरीर किस काम आयेगा? मुनि की ऐसी अयुक्त बात सुन वेश्या मुस्कराकर बोली - मुने ! कांच के लिए उत्तम मणि और गधे के लिए हाथी छोड़ना कौन पसन्द करेगा? वेश्या के यह

वचन सुन मुनि कामातुर हो बोले - हे रंभोरु ! मेरे लिए तो तुम ही उत्तम मणि और गजेश्वर हो। इसके बाद बुद्धिषेणा ने जब यह कहा कि थोड़ी देर के सुख के लिए समीप आये हुए सुख को क्यो छोड़ते हो? तो मुनि कहने लगे - मुझे तो तेरे संगम से रंजायमान सुख अच्छा लगता है।

इसके सिवा यह भी बात है कि नित्य सुख इंद्रियों के अगोचर है। वह हैं या नहीं, इसका क्या ठिकाना है? मुनि की ऐसी विपरीत बात सुन बुद्धिषेणा ने उन्हें भ्रष्ट समझा और अति अपमान के साथ घर से बाहर निकाल दिया। वेश्या से अपमानित हो विचित्रमति वन में लौट आए और तप तपने लगे। वे कभी तो एक महीने बाद पारणा करते, और कभी दो मास बाद आहार लेते। इस प्रकार के दुष्कर तप की प्रशंसा जब राजा ने सुनी तो वह उनके वश हो गया। बुद्धिषेणा ने जब राजा को उसके अधीन होते देखा तो मन में सोचा कि - अवश्य ही कोई यह महापुरुष है और फिर इसकी अनुचरी वह भी हो गई। वेश्या का संग पाकर विचित्रमति मोहांध हो तप से भ्रष्ट हो गया सो ठीक ही है - पूर्वजन्म के स्नेह से स्नेह और बैर से बैर होता है।

आयु के अंत में मरकर वही मुनि यह तेरा हाथी उत्पन्न हुआ है और त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति के श्रवण करने से इसे जातिस्मरण हो गया है। इसलिए शोकाकुल हो इसने खाना नहीं खाया। राजा ने अपने हाथी का कुल वृत्तांत सुनकर सोचा - हा ! इस धन, राज्य, स्त्री, पुत्र आदि सबकों धिक्कार है इसलिए वह रत्नायुध, पुत्र को राज्य दे अपनी माता रत्नमाला के साथ संयमी हो गया। मुनि हो, रत्नायुध ने घोर तप तपा और समाधिपूर्वक प्राण छोड़ने से अच्युत स्वर्ग में देव हुआ।

तप के प्रभाव से रत्नमाला भी स्त्रीलिंग छेदकर अच्युत स्वर्ग में अच्युत नामक देव हुई। वहाँ उन दोनों की बाईस सागर की आयु थी, बाईस हजार वर्ष बाद एक बार मानसिक आहार करते थे और बाईस पक्ष बाद एक बार उच्छ्वास लेते थे। उनके शुक्ललेश्या थी, पद्मराग मणि के समान तीन हाथ ऊँचा शरीर था। अथानंतर मंत्री सत्यघोष का जीव जो पंकप्रभा नरक में

गया था । वह वहाँ से निकला और नाना योनियों में दुःख भोगने लगा । छत्रपुर नगर में काजल के समान काला दारुण नाम का व्याध था । वह महापाप का पुंज सरीखा भयावह था । उसकी स्त्री मंगिका नाम की थी और ब्रह्मा ने जंगम अंधकार की माला ही रच दी है ऐसी मालूम पड़ती थी । वह सत्यघोष का जीव उन दोनों के आकर अतिदारुण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ ।

एक दिन उसी प्रियंगुखंड वन में विहार करते वज्रायुध मुनि पधारे । वहाँ वे नाना हिंसक पशुओं से व्याप्त वन को देखकर परमात्मा का ध्यान लगाते हुए कायोत्सर्ग मांडकर विराज गए । उस समय वहाँ वह अतिदारुण व्याध आया और तप से कृश, अधजले मुर्दे के समान विवर्ण शरीर वाले मुनि को देखकर गाली देता हुआ बोला - अरे तू कौन है? और इस जनशून्य मेरे वन में कहाँ से आया है? तेरा क्या नाम है, किसका लड़का है? शीघ्र ही बता । नहीं तो मुक्के, पत्थर और वाणों से तुझे शीघ्र ही यम के घर पहुँचा दूँगा । जब मुनिराज ने उसकी बात का कोई उत्तर न दिया और मेरु के समान निश्चल, सिंह के समान वीर, समुद्र के समान गंभीर वे अपने ध्यान से विचलित नहीं हुए तो उस दुष्ट ने उन्हें पूर्व बैर के वशवर्ती हो पत्थरों से मारा ।

कंठपर्यन्त पत्थरों से मारने पर भी जब मुनि ध्यान के अवलम्बन से न गिर पाये तो उनके गले में धनुष डाल कर वह खींचने गला, जब उससे भी उनकी शांति भंग न हुई तो उसने मुनि के मस्तक पर धनुष मारना शुरू किया परन्तु मुनिराज तत्वज्ञानी थे, वे बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन करने लगे । सो ठीक ही है - वास्तव में तप वही है, जो विघ्न आने पर भी अपनी सामर्थ्य बनाए रखे । मुनिराज ने सोचा - इस संसार में धनधान्यादि जो कुछ भी शरीर को हितकर दिख पड़ता है, वह सब अनित्य हैं, पिता, माता, स्त्री, पुत्र, कुटुम्बादि भी क्षणभर में नष्ट हो जाने वाले हैं। छह खण्ड पृथ्वी के मालिक चक्रवर्ती आदि महान विभूति के धारक भी कालरूपी सर्प के ग्रास बन जाते हैं। देव, आर्यखंड की पृथ्वी, राजा, धरणेन्द्र, पर्वत,वृक्ष, तारा, ग्रह, दैत्य,

देवेन्द्र, इष्ट, अनिष्ट पदार्थ, पापदायक पुद्गल सब काल आने पर नष्ट हो जाते हैं। काल का कुछ भी प्रतीकार नहीं है। इस संसाररूप जंगल में जीवरूपी हरिण को कालरूपी सिंह निश्चय से खा डालता है, उस समय इसकी किसी प्रकार भी रक्षा नहीं हो सकती। हे मन ! जिस समय काल आकर घेर लेता है, उस समय पिता- माता तो पुत्र को और पुत्र, माता - पिता को कोई भी किसी को नहीं बचा सकता।

सार रहित इस संसार में कोई भी किसी का नहीं है, सब स्वार्थ से प्रेम करते हैं, यह निश्चित बात है। यह जीव ही सिद्ध, बुद्ध, निरंजन और नित्य है। वह किसी के द्वारा छेदा - भेदा नहीं जा सकता। यह अनादिकालीन चेतन है। इसका निर्द्वन्द हो ध्यान करना चाहिए। यह पुद्गल जीव से सर्वथा भिन्न है, कर्म से रंजायमान है, इसलिए इस विनश्वर से मित्रता करना अनुचित है। यह शरीर शुक्र, मज्जा आदि अपवित्र सात धातुओं से बना है, मलमूत्र आदि से व्याप्त है, हड्डियों से गुंथा हुआ है, रोगरूपी सर्पों का घर है, चाम से मढ़ा हुआ है और अपवित्र असह्य दुर्गन्धों से पूर्ण है, कर्मों का कारण है। ऐसे देह का ध्यान छोड़कर कौन पोषेगा?

अर्थात् देह की रक्षा के लिए ध्यान का छोड़ना अनुचित है। मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि से कर्मों का आस्रव होता है और उससे यह जीव नरक में जाता है। द्रव्य और भाव दोनों प्रकार के आस्रवों का रुकना संवर है और वह व्रत धर्म आदि के पालने से होता है, जिसके कारण यह जीव शिव पद को पा लेता है। निर्जरा दो तरह की होती है - सविपाक और अविपाक, जिसमें सविपाक निर्जरा तो समस्त संसारी जीवों के होती है और अविपाक मुनियों के ही होती है। यह लोक अनादिनिधन है, छह द्रव्यों से व्याप्त है और पैर पसार कर खड़े पुरुष के आकार का है। योगी लोग ध्यान की सिद्धि के लिए लोक रचना का विचार करते हैं, जिससे परम पद में मन स्थिर हो जाता है। वस्तुओं के यथार्थ ज्ञान कराने में दीपक के समान कारण सम्यग्ज्ञान संसार में दुर्लभ है, इसके प्राप्त हो जाने पर प्राणियों को आत्मज्योति का स्पष्ट

भास होने लगता है। यह सम्यग्ज्ञान कर्मरूपी वृक्ष को विदीर्ण करने के लिए तो फरसा है, कामरूपी पर्वत को भेदने के लिए वज्र है, अज्ञानांधकार के लिए उत्कृष्ट सूर्य है, इसलिए ज्ञान का सदा ध्यान करना चाहिए। जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म इस संसार में बहुत की कठिनता से प्राप्त होता है, इसलिए इसकी प्रयत्न से रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार बारह अनुप्रेक्षाओं का चिंतवन करते हुए उन मुनिराज ने उपसर्ग को शांतिपूर्वक सहकर अपने प्राण छोड़े और धर्मध्यान के प्रभाव से वे सर्वार्थसिद्धि में जाकर अहमिन्द्र के सुख भोगने लगे। वहाँ उनके शुक्ललेश्या थी, एक अरत्नी (हाथ) प्रमाण शुक्ल शरीर था, तैंतीस सागर की आयु थी और अन्यत्र गमनादि से रहित थे। उनमें लोकाकाश तक को उलट देने की सामर्थ्य थी। वह व्याध आयु के अंत में मरा और पाप के उदय से सातवें नरक पहुँचा, जहाँ के दुःख वर्णन करने में सिवाय केवली भगवान के कोई भी समर्थ नहीं है। धर्म्यध्यान के बल से मुनि वज्रायुध में संसार के समस्त सुखों की जननी, कठिनता से प्राप्त होने वाली सर्वार्थ सिद्धि जब लीन (आसक्त) हो गई तब संसार की और लक्ष्मी की तो बात ही क्या है? सो ठीक ही है - धर्म्यध्यान के बल से जब मोक्ष सुख तक मिल जाता है, तब इतना हो जाना मुनियों के लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है। जिन्होंने इन्द्रियों को वश में कर लिया है उनके वास्ते न तो स्वर्ग दुर्लभ है, न राजाओं के सुख ही दुर्लभ हैं और न मोक्ष सुख ही कठिन है और जिनको इन्द्रियों ने जीत लिया है, उनके लिए क्या मोक्ष, क्या स्वर्गसुख और क्या राजसुख, सब दुर्लभ ही नहीं असम्भव हैं।

आठवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।। 8।।

नौंवा सर्ग

अविनाशी जगनाथ जिन, शिवदायक शिव ईश ।
शिव मग दीजे मोहि प्रभु, नाऊँ तुव पद शीश ।।

अथानंतर धातकीखंड के पूर्वभाग में स्थित पश्चिम विदेह क्षेत्र के गंधिल देश में अयोध्या नाम की नगरी है। उसमें अर्हद्दास नाम का राजा किसी समय राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुव्रता था। उन दोनों के रत्नमाला का जीव अच्युत स्वर्ग से चयकर वीतभय नाम का तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। रत्नायुध का जीव उसी राजा की दूसरी रानी जिनदत्ता के विभीषण नाम का पुत्र पैदा हुआ। उन दोनों में पुण्य के प्रताप से वीतभय तो बलभद्र और विभीषण नारायण हो, पृथ्वी का निष्कंटक राज्य करने लगे।

आयु के अंत में विभीषण तो नारायण होने और आरम्भ जनित महापाप से मरकर द्वितीय नरक गया और बलभद्र भाई के वियोग में पहले अति दुःखित हुआ परन्तु फिर विरक्त हो मुनि हो गया। उसने दुःसह तप तपे, अन्त में मरकर लान्तव स्वर्ग के आदित्याभ विमान में आदित्याभ देव हुआ। प्रिय धरणेंद्र ! वह मैं ही हूँ। मैंने अवधिज्ञान के बल से जब अपने भाई का नरक में दुःख भोगते जाना, तो मैं उसे वहाँ से निकालने के विचार से उस जगह गया। मैंने अपने भाई को सम्बोध और दुःख देने वाले असुरों को

ताड़ना दे, उसे वहाँ से निकालने के अनेक उपाय किए परन्तु उनसे, सिवा अनेक दुःखों के उसको कोई लाभ न मिला। इसके बाद मैं श्री सीमंधर भगवान के समवशरण में गया और वहाँ मैंने तेरे जो भव सुने, उन्हें तू सुन। इसी जंबूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में अयोध्या नाम की नगरी है। वहाँ का राजा श्रीधर्मा था और उसकी रानी सुसीमा थी। आयु के अंत में विभीषण नरक से निकला और उन दोनों के सुधर्मा नाम का सुत हुआ।

एक दिन अनंत मुनिराज से धर्म का उपदेश सुन वह विरक्त हो गया और तप तपकर ब्रह्मस्वर्ग में पहुँचा। स्वर्ग में जाकर वह देवांगनाओं के साथ अनेक भोग भोगने लगा और बेमालूम काल बीतने लगा। वज्रायुध का जीव सर्वार्थसिद्धि से चयकर संजयंत नाम का बलवान जितेन्द्रिय पुत्र हुआ। ब्रह्मस्वर्ग का देव आयु के क्षय होने पर संजयंत का छोटा भाई जयन्त हुआ और मोहवश मिथ्यादृष्टि हो निदान से मरकर धरणेंद्र हुआ। वही तू है सो ठीक ही है, मोह से क्या नहीं होता? सत्यघोष का जीव जो सातवें नरक गया था, वह वहाँ की जघन्यायु को भोग कर निकला और सर्प हुआ। मरकर तीसरे नरक गया। वहाँ से निकल कर तिर्यंचों की त्रस स्थावर अनेक योनियों में भ्रमण करने के बाद भरतक्षेत्र के भूतरमण वन में ऐरावती नदी के किनारे गोश्रृंग तपस्वी के शंखिका नामक स्त्री के मृगश्रृंग नाम का पुत्र हुआ।

पंचाग्नि तप तपने वाले उस मृगश्रृंग ने दिव्यतिलक नगर के अधिपति अंशुमाली को देखकर निदान किया कि जैसा यह रूपवान प्रतापी और विशाल राज्य का स्वामी है, वैसा ही मैं भी इस तपस्या के फल से होऊँ इसके बाद विजयार्ध पर्वत की उत्तर श्रेणी के गगनबल्लभ नामक नगर में वज्रदंष्ट्र विद्याधर के यहाँ विद्युत्प्रभा रानी से यह विद्युद्दंष्ट्र नाम का पुत्र पैदा हुआ है। इस पापी ने तेरे बड़े भाई को मारकर दुष्कर्मों का बंध किया है जिसके प्रभाव से असह्य अनंत दुःखों को यह भोगेगा।

इस प्रकार यह जीव कर्म के वशीभूत हो संसार में परिभ्रमण करता फिरता, पिता, पुत्र, भाई, बंधु, माँ, स्त्री आदि हुआ करता है इसलिए वस्तुतः

देखा जाए तो न तो कोई मित्र ही है और न कोई शत्रु ही है। हे धरणेंद्र ! अतएव तुम इसके साथ बैर मत बाँधों। इस संसार में कौन किसका अपकारी और कौन किसका उपकारी नहीं हुआ, यह सोचकर पाप का बंध करने वाला बैर मत करो। इस विद्युद्दंष्ट्र को छोड़ दो। इस प्रकार आदित्याभ के वचन सुनकर धरणेंद्र शांत हो गया, सो ठीक ही है सत्य बात सुनकर सज्जनों को तो सुख होता है और मूर्ख दुर्जन दुःखी होते हैं।

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से हंस को तो आनंद होता है परन्तु उल्लू दुःख मनाता है। इसके बाद धरणेंद्र ने कहा - देव ! मैंने तुम्हारे प्रसाद से सद्धर्म का श्रद्धान तो किया परन्तु इस नीच विद्याधर ने अपनी विद्या के घमंड में आकर यह नीच कर्म किया है। इसलिए इसकी और इसके समस्त वंश की समस्त विद्याओं को छीन लेता हूँ। इसके उत्तर में आदित्याभ ने कहा - भाई ! तुम्हें यह भी नहीं करना चाहिए। धरणेंद्र ने कहा तब यह न सही तो इतना तो अवश्य होना चाहिए, कि इसके कुकर्म के फलस्वरूप इसके वंश को बिना संजयंत मुनि की आराधना किये कोई भी विद्या सिद्ध न हो। इसके सिवा मेरे भाई को चतुर्दशी के दिन सिद्धपद की प्राप्ति हुई है, इसलिए बिना इस तिथि की आराधना किए भी किसी को सिद्धपद न मिले और यह चतुर्दशी पर्व मानी जाए।

यदि इनको इस प्रकार भी शाप न दिया जाएगा तो ये पापी विद्याधर विद्या के मद से अन्य मुनियों को भी कष्ट देंगे। यह पर्वत विद्याधरों के अपराध से लज्जित है इसलिए इसका नाम भी आज से ह्रीमंत रखा जाए। इसके बाद मुनि संजयंत की पाँच सौ धनुष ऊँची एक मूर्ति बनाकर वहाँ स्थापित की और उसकी अनेक महोत्सवों से प्रतिष्ठा की, इस प्रकार आदित्याभ देव के उपदेश से उस धरणेंद्र ने उस विद्युद्दंष्ट्र को छोड़ दिया और निर्बैर हो, प्रसन्नतापूर्वक अपने स्थान को चला गया इसके बाद वह आदित्याभ भी स्वर्ग चला गया। सो ठीक ही है हितेच्छु सात्विक पुरुष परस्पर का बैर छुड़ा ही देते हैं। अथानंतर इसी जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में उत्तर मथुरा नाम की

एक नगरी है। उसका राजा किसी समय अनंतवीर्य था। उसके मेरुमालिनी और अमितवती नाम की दो रानियाँ थीं। आदित्याभदेव का जीव स्वर्ग से चया और बड़ी रानी मेरुमालिनी के गर्भ से मेरु नाम का पुत्र हुआ। धरणेंद्र का जीव दूसरी रानी के मंदर नाम का पुत्र हुआ और वे दोनों सूर्य चंद्रमा के समान सुंदर दीख पड़ते थे।

इस प्रकार श्रीविमलनाथ भगवान की दिव्य ध्वनि से जब उन मेरु और मंदर दोनों भाइयों ने अपने पूर्व भव सुने तो उन्हें वैराग्य हो गया। वे अपने विशाल राज्य को छोड़कर विमलनाथ भगवान से दीक्षा लेकर मुनि हो गये। अब तो वे दोनों भाई कठिन से कठिन तप करने लगे। शीतकाल में वे नदी के तट पर कायोत्सर्ग से रहने लगे। जबकि शीत पड़ने से वृक्ष जलकर भस्म हो जाते हैं, रोंगटे ठर्रा निकलते हैं, तालाबों का जल जमकर पत्थर के समान हो जाता है और कमलवन मुरझा जाते हैं, उस समय चौपथ (चौहटे) में खड़े होकर वे ठंडी हवा के झकोरों की कुछ भी परवाह न कर अंजन पर्वत के समान निश्चल खड़े हो तप तपते थे एवं उनके केश दूब (दर्भ) के अंकुरों के समान रुक्ष हो गए जान पड़ते थे।

जिस ऋतु में सूर्य की तीक्ष्ण ज्वाला से पृथ्वी अग्नि से तपाये गए कड़ाहे के समान गरम हो जाती है और अनेक प्रकार की पीड़ा होती है। उस ग्रीष्म काल में वे पहाड़ की चोटी पर सूर्य के सामने मुखकर खड़े हो, आत्मध्यान करते थे। जिस समय वर्षा ऋतु में मेघों की गर्जना से दिशाएँ व्याप्त हो जाती हैं, मेढकों की टर्रावन से लोग डरने लगते हैं, बिजली के गिरने से पेड़ भुंज जाते हैं, उस समय ये दोनों निश्चलचित्त हो आत्मध्यान करते थे। उनके पैरो तले दूब आदि घास उपज आती थी, शरीर से लताएँ चिपट जाती थीं और साँप बिल बना लेते थे,

उन मुनिराजों को सातों ऋद्धि प्राप्त हो गईं थीं और चौथा मनः पर्ययज्ञान उदित हो गया था।

जिस प्रकार ताराओं से वेष्टित चंद्रमा शोभित होता है, उसी प्रकार

पचपन गणधरों से युक्त विमलनाथ भगवान भी शोभित होने लगें, वे उस समय मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका चारों संघों से युक्त थे और असंख्य देवों से सेवित थे। उन भगवान ने भव्य जीवों को हितमार्ग पर लगाने के लिए अंग, वंग, कलिंग, मगध, विराट, सिंधु,कर्णाट, कुंकुम, कुरु, मरु, महाभोट, भोट, काश्मीर, लाट, गौड़, मेड़, पाट, फारस, मालव आदि देशों में विहार किया। जिस समय उनकी आयु में एक मास बाकी रह गया तो वे सम्मेदाचल पर पधारे और समवशरण विघट गया। आषाढ़ मास की कृष्ण अष्टमी की रात्रि के पहले पहर में जबकि उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का उदय था समुद्रघात किया, सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती शुक्लध्यान के बाद व्युपरतक्रियानिवृत्ति चौथे शुक्ल ध्यान की आराधना कर अयोग केवली हो सुर-असुर आदि से पूजित वे घाति-अघाति सब प्रकार के कर्मों का क्षयकर मोक्ष पधार गये। उसी दिन से आषाढ़ कृष्णाष्टमी इस संसार में पूजी जाने लगी। जिन विमलनाथ भगवान ने संसार समुद्र को पार कर लिया, जो कर्मरूपी दावानल को बुझाने के लिए मेघ के समान हैं, जिनके चरणकमलों को देव - देवेंद्र तक पूजते हैं, वे हमारी रक्षा करें। विमलनाथ भगवान रूपी सूर्य आठ कर्मरूपी अंधकार को नष्ट कर, केवलज्ञानरूपी किरणों से भव्य कमलों को प्रफुल्लित कर मनोहर सम्मेदाचल पर चढ़ मुक्ति को प्राप्त हो गए। उन भगवान ने विहार कर अपने उपदेश से अगणित जीवों का कल्याण किया, मोहरूपी पर्वत को वज्र के समान भेद डाला, केवलज्ञानरूपी नेत्रों को प्राप्त किया और शुद्ध समाधि में लीन हुए, वे हम सबकी रक्षा करें।

नौवा सर्ग समाप्त हुआ ॥9॥

दसवाँ सर्ग

अथानंतर भगवान विमलनाथ की निर्वाण प्राप्ति जब देवों ने जानी तो वे निर्वाणोत्सव मनाने के लिए उसी समय अपने वाहनों पर चढ़कर इंद्र के साथ आये। मार्ग में सब लोग जय - जय शब्द बोलते चलते थे। इंद्र ऐरावत हाथी पर चढ़कर सबसे आगे चल रहा था, देवांगनाएँ मनोहारी नृत्य करती चल रहीं थीं और यद्यपि वे आकाश में चल रहे थे, तो भी देव, देवियों और नर्तकियों में से किसी का पैरों का उठाना और धरना नहीं मालूम पड़ता था।

उस समय बहुत से देवों के हाथ में तो भाले थे, बहुतों के हाथ में शक्ति, धनुष, बरछी, गदा, त्रिशूल, भिंडपाल आदि अस्त्र - शस्त्र थे। कल्पवासी देवों में से बहुत से तो विमानों मे चल रहे थे और बहुतों ने विमानों पर(हंस, गरुड़, मैना, कोकिला आदि पक्षियों पर) सवारी कर रखी थी। वे देव असंख्यात थे। उनकी इन्द्र ने पाँच पंक्ति बना दीं थीं और वे प्रत्येक पंचवर्ण के विचित्र वस्त्र पहने थे।

जब सम्मेदाचल समीप आ गया तो वे भक्ति में आ नीचे उतर पड़े। इन्द्र ने उसी समय भगवान विमलनाथ की स्फटिकमयी मूर्ति का निर्माण किया और पूजा कर परोक्ष स्तुति करना प्रारंभ की। उसने दोनों हाथों को जोड़कर भक्ति में गदगद होकर कहा - तुम सबके रक्षक होने से नाथ हो, कर्मों को

जीतने से जिनेन्द्र हो, तप के खजाने हो, दया के समुद्र हो, मोक्ष लक्ष्मी के प्यारे पति हो, मोह का आपने ही नाश किया है, सर्वज्ञ आप ही हो, लोगों को कल्याण की प्राप्ति तुम्हीं से होती है। आप चिदानन्द स्वरूप हैं, भव्यरूपी कमल वन के सूर्य हो और कहाँ तक कहा जाए – आपकी आराधना कर ही देव – देवेन्द्र मनुष्य आदि सब संसार समुद्र को पार कर मोक्ष पाते हैं।

इसके बाद इन्द्र ने भगवान के अवशिष्ट शरीर को कपूर, अगर, चंदन आदि सुगंधित द्रव्यों से दाह – संस्कार कर विनय भाव प्रगट किया और फिर अंत में हर्षनृत्य आरंभ किया। उस समय सब देव अपनी – अपनी देवियों के साथ श्रेणीवद्ध खड़े हो गए और हाव – भाव लय – तान आदि से मनोहर गीतों में भगवान के गुण गाने लगे। नाटक की समाप्ति हो जाने पर देवों ने जिनेंद्र के चरण – कमलों से पवित्रीकृत गिरिराज को नमस्कार किया और अपने – अपने स्थान पर चले गए सो ठीक ही है – सज्जनों की संगति से श्रेष्ठ फल की ही प्राप्ति होती है। देखो !

जिनेन्द्र भगवान् के चरणस्पर्श से पहाड़ भी पूजा जाता है। जो लोग सम्मेदशिखर की मौन और ब्रह्मचर्य धारण कर भक्ति भाव से पूजा करते हैं, वे अवश्य मुक्ति पाते हैं। तिर्यंच भी उस पर्वत की सेवा से जब देव हो जाते हैं, तब मनुष्य उस पर तपकर मोक्ष नहीं पा सकते? यह तीर्थ सब तीर्थों में प्रधान है इसलिए देवगण इसकी सेवा करते हैं, जो लोग इसकी यात्रा करते हैं उन्हें नरक और पशुगति में जन्म नहीं लेना पड़ता।

श्री 1008 पुष्पदंत भगवान के समय में मेघेश्वर विद्याधर ने इसी पर्वत पर मेघदेव की आराधना की थी और तब मेघ बरसने लगे थे। वह दिन अष्टमी का था, इसलिए वह भांडाष्टमी उसी दिन से पर्व मानी जाने लगी और उसी दिन आधी रात को सुकाल दुकाल पड़ने का शकुन साधा जाने लगा। अथानंतर एक दिन मेरु मुनिराज पर्वत की तलहटी में परमात्मा का ध्यान करते हुए प्रतिमा योग से विराजमान थे। आधी रात के समय विद्युन्माली नाम का विद्याधर अपनी स्त्री के साथ नाना पर्वतों पर क्रीड़ा करता हुआ, वहाँ से

निकला परंतु घंटरियों के शब्दों से शोभायमान उसका विमान मुनिराज के ऊपर आकर रूक गया। यह देख विद्याधर के क्रोध का ठिकाना न रहा। वह सोचने लगा - महाविद्या से रक्षित शत्रुओं को भयावह मेरा यह विमान अकस्मात् किस पापी ने रोक दिया? जिस प्रकार हंस को व्याध बांध लेता है, उसी प्रकार मेरे इस विमान को किसने स्थिर कर दिया।

यदि मैं किसी पापी को देख लूँगा तो फिर शस्त्रास्त्रों से उसे अवश्य मार ही डालूँगा बस ! इसके बाद उसने अपना धनुष हाथ में उठा लिया और बाण चढ़ाकर ज्योंहि नीचे की ओर फेंकने लगा, उसका हाथ पकड़कर स्त्री ने कहा - नाथ ! **मेरी बात सुन लीजिए। आपको बिना विचारे कोई काम न करना चाहिए, जो लोग अपनी सामर्थ्य बिना देखे काम कर बैठते हैं, वे मौत के मुँह में निश्चय पड़ते हैं।** आपका विमान जिसने रोक दिया है, वह यदि बलवान् हुआ तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी और उसको जीतना असंभव हो जाएगा और तब आपकी कीर्ति भी नष्ट हो जाएगी ,

कीर्ति चले जाने से जीवन भी धिक्कारने योग्य हो जाएगा। मनुष्यों को ये चार बाते बिना सोचे - समझे न करनी चाहिए क्योंकि विचारशील को लक्ष्मी स्वयं वर लेती है - एक तो असमय में गमन, दूसरे विषम संगति, तीसरे कुमित्रों से मित्रता और चौथे स्त्री पर क्रोध। इसी में एक कथा भी है, उसे हे नाथ ! आप सुनिए -

महाभोट देश में कुमारपाल नाम का एक सेठ रहता था, वह छप्पन करोड़ दीनारों का मालिक था। उसके प्रियंगु सुंदरी स्त्री थी और चित्र, विचित्र नाम के दो पुत्र थे। उनमें चित्र को जुआ खेलने का शौक पड़ गया। वह प्रतिदिन जुआरियों को ले जाकर धन देने लगा, जिससे पिता को असीम कष्ट होने लगा। आखिरकार पिता ने उसे कुछ धन देकर घर से अलग कर दिया, परंतु जुआ खेलने की उसकी आदत न गई। छोटा पुत्र विचित्र नम्र था, वह माँ - बाप की विनय किया करता था। एक समय वह सिंहलद्वीप व्यापार करने के लिए गया। उसने वहाँ पहुँचकर बारह करोड़ दीनारों का व्यापार

किया । अर्थात् इतना धन पैदा किया । इधर चित्र ने जुए में सब धन नष्ट कर दिया और अब उसे दूसरी बात सूझी । उसने सोचा - यदि मैं सोने - चाँदी आदि धातुओं के बनाने वाले किसी योगी के पास जाकर गुटिका विद्या सीख आऊँ तो अच्छा हो । इसके थोड़े ही दिन बाद कालंद नाम का एक कापालिक शमशाम भूमि में आया । उसकी प्रशंसा सुन बहुत - सी मिठाई वस्त्र भेंट में ले, यह चित्र भी उसके पास गया और नमस्कार कर पास में जा बैठा । योगी ने भी उसे भक्त समझ अति सम्मान किया सो ठीक ही है **स्वार्थसिद्धि से किसे प्रेम नहीं होता?** उस दिन से बराबर कापालिक की चित्र सेवा भक्ति करने लगा ।

छह महीने ठहरने के बाद जब वह कापालिक वहाँ से जाने लगा, तो चित्र ने उससे प्रार्थनापूर्वक सोना बना देने वाली विद्या माँगी । उत्तर में उस योगी ने भी यह कहकर उसे वह विद्या दे दी कि बच्चा ! रात के समय इसको विधिपूर्वक सिद्ध करना । क्योंकि विद्या सदा गुप्त रीति से ही सिद्ध होती है। इसके बाद जब योगी चला गया तो, चित्र ने वन में जा नाना रस मिलाकर ताँबे, लोहे तथा हंसपाक रस का सोना बनाना प्रारंभ कर दिया । पाँच बार जब उसने इस प्रकार सोना बना लिया तो उसकी तृष्णा बढ़ गई । उसने सोचा कि - जिस पर्वत पर अधिक लताएँ हो, वहाँ जाकर बहुत सा सोना बना लेना चाहिए फिर घर में आनंद से रहने लगूँगा । बस !

यह सोचकर वह हाथ में धनुषबाण ले आधी रात को महेन्द्र पर्वत की ओर अकेला ही चल दिया । इसी समय उसका छोटा भाई विचित्र धन पैदा कर बारह वर्ष के बाद, दस नौकरों के साथ अपने नगर को पास जानकर रात्रि में ही आ रहा था । उसे देख चित्र ने पूछा - अरे ! इस अंधियारी रात में कौन इधर आ रहा है? **यह सुन विचित्र ने कहा** - तू ही बता न ! तू कौन है? नहीं तो चक्र से अभी खंड - खंड कर डालूँगा । विचित्र की इस प्रकार की वाणी से चित्र को भी क्रोध आ गया और बैरी समझकर उसको मारने की ठान ली । बस ! इसके बाद ही यह सोचकर कि मैं इस पर पहले

बाण चला दूँ नहीं तो यह मुझे मार डालेगा । विचित्र ने अपना बाण छोड़ दिया। इसी प्रकार चित्र ने पहले चक्र चलाने की इच्छा से चक्र छोड़ दिया और इस प्रकार वे दोनों एक - दूसरे के शस्त्रों से मरकर पृथ्वी पर गिर पड़े ।

प्राणनाथ ! रात्रि को कुछ मालूम नहीं पड़ता इसलिए आपको बाण नहीं छोड़ना चाहिए । **यहाँ तक कि रात को कहीं जाना भी न चाहिए क्योंकि जिससे दुःख मिले वह काम बुद्धिमानों को नहीं करना चाहिए । अकुलीन पुरुषों के साथ बात करना विषम गोष्ठी है, बुद्धिमान लोग उसे कभी नहीं करते ।**

एक दिन मानसरोवर में क्रीड़ा करते हुए हंस ने हंसिनी से कहा - प्रिये ! हमारा भी कोई स्वामी है, जिसके साथ आनन्द से क्रीड़ा की जाए? उत्तर में हंसिनी ने कहा - समस्त पक्षियों में तुम ही तो श्रेष्ठ हो । तुम जल में रहते हो और मकरंद खाते हो । भला ! तुम्हारा राजा कौन हो सकता है? यह सुन हंस ने कहा - जब संसार में सबका कोई - न - कोई राजा होता है, तब तुम्हारा ही वह क्यों न होगा? **गुरु, राजा, धन, ज्ञान और स्त्री इनके बिना मनुष्यों का जीवन निष्फल हैं और बिन राजा के अन्यायी न्याय मार्ग पर नहीं चलते, इसलिए मैं अपने सुख के लिए अपने राजा को पूछता हूँ। तू बता** । हंस का जब अत्याग्रह देखा तो हंसिनी ने कहा - सह्य पर्वत पर वह है और रात में चलता फिरता है। अब तो हंसिनी के निवारण करने पर भी हंस वहाँ शाम को ही गया और पर्वत पर चढ़कर देखता ही था, कि वह उल्लू भी आ पहुँचा । उल्लू ने उससे उसका नाम, धाम और आने का प्रयोजन पूछा । हंस ने कहा मैं "आपका सेवक और आप मेरे राजा हैं।"

आपकी सेवा करने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। हंस की यह बात सुन उल्लू बहुत ही खुश हुआ और उसे भयंकर जंगल में पहाड़ पर ले गया । एक दिन उल्लू ने हंस से कहा - भाई ! तू क्या वस्तु खाता है जिससे सुन्दर और कोमल दीख पड़ता है। हंस बोला - मैं मानसरोवर पर रहता हूँ और मकरंद खाया करता हूँ। उल्लू ने यह सुनकर कहा तो भाई ! तुम अपना वह स्थान मुझे भी दिखलाओ । अब तो हंस बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे अपने

यहाँ ले आया। एक दिन आधी रात के समय सब हंस सो गए थे और उल्लू को रात में दिखता है। इसलिए जग रहा था। इतने में हंसराज नाम का धनुर्धारी उधर से निकला और उल्लू चिल्ला उठा। **हंसराज ने अपनी दाईं ओर उल्लू को अशुभ निशाना बांधकर तीर मारा। उसे देख उल्लू तो भाग गया, बेचारा हंस मारा गया। इसलिए स्वामिन्! कहता हूँ कि कुमित्र के साथ प्रेम करने से धन - धान्य लज्जा, स्नेह, जीवन, बुद्धि, विद्या, कौशल आदि सब नष्ट हो जाते हैं।** उस समय रात्रि अधिक थी इसलिए विद्याधरी ने परस्त्री के क्रोध से उत्पन्न मन को वैराग्य देने वाली कथा कहना प्रारम्भ किया।

गांधार देश में रुद्र नाम का एक वैश्य रहता था। वह दानी होने पर भी अति विषयी था। उसी नगर में श्रीपाल नाम का धनाढ्य सेठ रहता था। उसकी सेठानी का नाम सुन्दरी था। एक दिन रुद्र उस चकोरनयनी को देखकर कामातुर हो गया और किसी - न - किसी छल से प्रतिदिन उसके घर आने लगा। एक दिन मौका पाकर जबरदस्ती उस पापी ने सुन्दरी को आलिंगन कर कहा - मेरी अभिलाषा पूरी करो। सुंदरी ने क्रुद्ध हो उसे घर से तिरस्कार कर निकाल दिया। अब तो वह बहुत - कुछ लाल - पीला होने लगा और कहने लगा - मैं तेरा बहुत ही अनिष्ट करूँगा। सुन्दरी ने उसे निर्लज्ज समझकर कहा - प्रभो! मुझे अपने पति का डर लगता है, नहीं तो मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। इस प्रकार मीठी बातों से फुसलाकर उसे घर के भीतर ले गई। इसी बीच में घर के दरवाजे पर श्रीपाल आ गया। पति के डर से रुद्र को रत्नखचित पेटी के भीतर बंद कर ताला मार दिया। इसके बाद पति से बोली - स्वामिन्! अपने घर आज राजा के सेवक आकर कह गये है, कि जो तुम्हारे सुन्दर पेटी है, उसे राजा चाहते हैं, शीघ्र ही भेंज दें। श्रीपाल राजा की आज्ञा सुन डर से उस पेटी को वहाँ ले गया और बोला - राजन्! मेरे सिंहलद्वीप से आई हुई यह मणिमय नयनों की प्यारी पेटी है। मैं आपकी भेंट इसे देता हूँ, आप ग्रहण करें। कारण, देव मन्दिर या राजमन्दिर में देने से वह पदार्थ फिर मिल जाता है। राजा ने वह लेकर सिंधुस्वामी को मित्रता में दे दी और वह भी

लेकर राजा की आज्ञा से घर चल दिया। चतुरंगसेना के साथ जा रहा था कि मार्ग में माँस समझकर भेरुंड पक्षी उस पेटी को लेकर आकाश में उड़ गया। राजा के सेवकों ने जब उसे छुड़ाना चाहा तो वह समुद्र में गिर पड़ी। वहाँ से जब सेवक निकालने लगे तो उसके भीतर से रुद्र ने कहा - "संसार में मुझ रुद्र से भिन्न जो स्त्रियों के जाल में नहीं फँसे ऐसे लोग ही कृती, ज्योतिषी और पंडित हैं।" पेटी के भीतर से आवाज आती सुन सेवक लोग डर गये और राजा के सामने जाकर बोले - पेटी तो बोलती है। राजा के पूछने पर सेवकों ने उस अर्थवाली गाथा कह सुनायी। राजा ने कहा - अरे ! उसमें कोई विद्वान् पुरुष बैठा है, जाओं उसे समुद्र में से शीघ्र निकाल लाओ।

राजा की आज्ञा सुन सेवक ज्यों ही उस (पेटी) को लेने के लिए गये त्योंही एक मच्छ ने उसे निगल लिया और बेचारा रुद्र व्यर्थ ही मारा गया। इसलिये हे स्वामिन ! जो लोग परस्त्रियों के साथ प्रेम करते हैं, वे रुद्र की भाँति ही नष्ट हो जाते हैं। विद्वानों को भला - बुरा विचारकर ही कार्य करना चाहिये। स्त्री की यह बात सुन विद्युन्माली ने कहा - हे प्रिये ! तेरा कहना ठीक है, परन्तु औरतों की बातें मूढ़ लोग ही माना करते हैं। उत्तर में स्त्री ने कहा - हितकर बात स्त्री की अवश्य माननी चाहिए और अहितकर विद्वानों की भी नहीं। परन्तु विद्युन्माली ने उसके वचनों का तिरस्कार कर बाण सब दिशाओं में छोड़ ही दिये और उनसे अगणित वन्य जीव मर गये परन्तु मेरु के समान अचल मुनिराज मेरु का ध्यान न डिगा तब तो उस दुष्ट विद्याधर ने छत्तीस मुँह व हाथ वाली विद्या का स्मरण किया और मुनिराज मेरु को उठाकर नाना तरह की गाली देता और विद्या से कंपायमान करता हुआ, आकाश में ले चलने लगा।

इतने में ज्योतिष्चक्र में स्थित वैडूर्यदेव का आसन कंपायमान हुआ। अवधिज्ञान से मेरु मुनि पर विघ्न आया जान वह शीघ्र ही हाथ में खड्ग लेकर आया। बादल के समान गरजकर असह्य दुर्वचनों को कहते उसे देख विद्युन्माली डर गया और मेरु मुनि को छोड़कर जाने लगा। दो तीन पैर ही

आगे वह बढ़ने पाया होगा कि देव ने उसे सांकल से बांध लिया। उसी समय मेरुमुनि को लोक - अलोक का स्पष्ट एक साथ ज्ञान कराने वाले केवलज्ञान की उत्पत्ति हो गई और चारों निकाय के देव केवलज्ञान की पूजा करने के लिये उत्सव सहित आये। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने तीन कटनीयुक्त गन्ध कुटी बनाई और मनुष्य देव आदि सब वंदना कर गद्य - पद्यमय स्तुति करने लगे।

इसके बाद वे सब उनके चरण कमलों को नमस्कार कर सब तरफ बैठ गए, सो ऐसे मालूम पड़ने लगे मानों क्षीर समुद्र में हंस ही बैठे हों। उसी समय मेरु के समान अपने में निश्चलता प्राप्त करने के लिए इन्द्र ने ध्यान की सिद्धि में कारणभूत एक सौ आठ दानों की मणिमाला बनायी। माला के अंत में मेरुमुनि के नाम की गांठ दी और देव विद्याधरों के साथ उसे गले में पहन लिया। अथानंतर इक्ष्वाकुवंशीय पल्लवपुर का स्वामी उग्रसेन नाम का राजा वहाँ आया था उसने मेरु भगवान् से धर्म का उपदेश सुन, तप में विघ्न आने का कारण पूछा और कहा कि - भगवन् ! इस विद्युन्माली ने किस बैर के कारण आपके साथ ऐसा व्यवहार किया और इस विद्याधर को ही इस देव ने क्यों बाँधा? उत्तर में मुनिराज ने कहा -

धातकीखंड के ऐरावत क्षेत्र में किष्किंधा नाम का एक नगर है। उसका राजा किसी समय सिंहरथ था। उसी नगर में माधव नाम का एक सेठ रहता था, उसके सुंदर बुद्धिमान सात पुत्र हुए। एक दिन वह सेठ वर्षा ऋतु में कहीं जा रहा था। शुभ भाग्योदय से उसे रत्नों का भरा पात्र मिल गया। रात्रि को उसने लड़कों के सामने ही पृथ्वी में गाढ़ दिया और आनंद से रहने लगा। एक दिन सबसे बड़े लड़के अरिंजय ने ("मन में यह विचारकर कि पिताजी के मरने पर इसके सात भाग होंगे") उस धन को दूसरी जगह गाड़ दिया सो ठीक है दुर्गति देने वाले लोभ को धिक्कार हो। कुछ दिन बाद माधव सेठ ने उस धन को देखा तो वह उसे न पाकर मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और मरकर खजाने पर सांप हो गया। एक दिन अरिंजय उस धन को लेने के लिए गया और धीरे - धीरे पृथ्वी को खोदने लगा। इतने में उस साँप ने आकर उसे

काट लिया। अरिंजय ने भी क्रोध में आकर साँप को मार डाला और इस प्रकार वे दोनों मर गये। इसी भरतक्षेत्र के उत्तर मथुरा नगरी में वे दोनों एक बनिए के यहाँ भद्र और हर नामक पुत्र हुए। वे दोनों मूर्ख कुरूप, दुष्ट और निर्लज्ज थे। एक समय मगध देश में व्यापार के लिए वे दोनों गये थे। उनमें से साँप के जीव भद्र ने मन में यह विचार कर कि इस हर को मार डालने से मैं अकेला ही धन का स्वामी हो जाऊँगा। आधी रात के समय धोखे से एक रास्तागीर (पथिक) को मार डाला और वहाँ से चल दिया।

रात्रि के पिछले पहर में जब हर की आँख खुली तो पास में मरे हुए आदमी को देखकर उसने सोचा - जरूर मेरे भाई ने ही मेरे धोखे में इस पथिक को मार डाला है। यदि मैं यहाँ रह जाऊँगा तो मेरी निन्दा होगी क्योंकि "दुष्ट की संगति से बदनामी, बंधन, ताड़न और मरण सुलभता से प्राप्त हो जाते हैं।" इस प्रकार विचारकर चिन्ताकुल भूखा हर भी चल दिया और जब अपने गाँव के समीप पहुँचा तो भी सोचने लगा कि "मैं किस धर्म - अधर्म को जानने वाले पुरुष को अपना दुःख निवेदन करूँ? बस ! वह मेरे पास आया और सब वृत्तांत सुनाकर चुप हो गया। मैनें उस पापी भद्र को बुलाया और दुःसह दण्ड दे नगर से निकलवा दिया।

लज्जित हो भद्र ने मुनि के पास जाकर दीक्षा ले ली। आयु के अंत में मुझ पर क्रोध रखकर यह मरा और विद्याधर हुआ। पूर्व में जो मैंने दंड दिया था, उससे इसने मुझसे तीव्र बैर बांध लिया और मेरे तप में विघ्न किया। इसलिए हे राजन् ! किसी के साथ बैर न करना चाहिए। आदित्याभ के भव में जिस विद्याधर विद्युद्दंष्ट्र को मैंने धरणेंद्र से छुड़ाया था, वह विजयार्थ पर्वत की उत्तर श्रेणी में श्रीपुर नगर के राजा भूपाल की स्त्री ललांगी से उत्पन्न रुर्वक्षी पर मोहित हो गया और जब याचना करने पर भी भूपाल ने उसे रुर्वक्षी न दी तो वह उसके साथ युद्ध कर बैठा। युद्ध में विद्युंद्दष्ट्र की हार हुई इसलिए अपमान से दग्ध हो वह कुतप तपने लगा। आयु के अंत में मरकर ज्योतिषी देव हुआ और जो मैंने पूर्व जन्म में इसका उपकार किया था, उसकी याद कर

इसने मेरे विघ्न को शांत किया है। इस प्रकार केवली भगवान से अपना सम्बन्ध सुनकर विद्याधर और राजा उग्रसेन दोनों दीक्षित हो मुनि हो गए। ज्योतिषी देव भी उनकी स्तुति कर संतुष्ट चित्त हो अपने विमान में चला गया सो ठीक ही है, सज्जन उपकार को कभी नहीं भूलते। श्रेष्ठ पुरुष पीड़ित होने पर भी विचार को प्राप्त नहीं होते जैसे कि ईख पेली जाने पर भी मीठे रस को ही देती है, संसार में चंदन के समान श्रेष्ठ पुरुष तो बिरले हैं और आकवृक्ष के समान बहुत। जैसे कि हंस तो कहीं दीख भी नही पड़ते परन्तु उल्लू अगणित मिलते हैं। गणधर मेरु ने एक हजार वर्ष तक नाना देशों में विहार किया और आयु के अंत में मोक्षसुख पाया।

सम्मेदशिखर पर्वत के समीप पद्मकंवल नाम का एक नगर है। वहाँ यशोधर नाम का सेठ रहता था, उसकी सेठानी का नाम यशस्विनी था। एक दिन उसे साँप ने काट खाया। मरी समझकर उसे लोग जलाने के लिए भूतारण्य नामक शमशान मे ले गये परन्तु वह मंदर मुनि के अंग का स्पर्श कर आने वाली वायु से स्वस्थ हो जीवित हो गई। सेठानी को जीवित देख लोग मन में बहुत ही डरे और सोचने लगे कि यह भूत की लीला है। लोगों को भीत देख मांसभक्षी असंख्या जंतुओं ने उन्हें आ घेरा। यह देख वे सबके सब मंदर मुनि के चरणों के समीप जा इकट्ठे हुए। वनदेवी ने मुनि की भक्तिवश उस वन के मजबूत तीन परकोट रच दिये और प्रातः काल उनके मुखिया सेठ से यह कह दिया कि मुनिराज मंदर को धन्य है, जिनके प्रभाव से सेठानी का विष दूर हो गया है। यह सुन सेठ - सेठानी विरक्त हो दीक्षित हो गये। मंदर मुनि भी ध्यान से कर्मों का नाश कर देवताओं से पूज्य सर्वज्ञ हो मुक्ति पधार गए। उग्रसेन मुनि तीव्र तप तपकर सर्वार्थसिद्धि पहुँचे।

विद्याधर विद्युन्माली यथाशक्ति तप तपकर पाँचवें स्वर्ग में ललित नाम का देव हुआ। सो ठीक ही है - जो लोग तप तपते हैं उनको अद्भुत लक्ष्मी प्राप्त होती है, उनके स्वर्ग तो घर में ही है और कामधेनु किंकरी है। श्री विमलनाथ भगवान के पचपन तो गणधर थे, ग्यारह सौ पूर्व भवधारी मुनि थे,

अड़तीस हजार पाँच सौ (जिन्होंने इनसे ही दीक्षा ली थी) शिष्य थे, अड़तालीस सौ अवधिज्ञानी थे, पाँच हजार पाँच सौ केवली थे, छत्तीस सौ वादी मुनि थे, अड्सठ हजार सर्वसंयमी मुनि थे, एक लाख तीन हजार पद्मा आदि आर्यिकायें थीं, दो लाख श्रावक, चार लाख श्राविकायें, नौ हजार विक्रिया ऋद्धि के धारक, पाँच हजार पाँच सौ मनः पर्ययज्ञानी और असंख्यात देव भक्त थे । इन धर्मनिष्ठों से युक्त विमलनाथ भगवान अतिशोभित होते थे । विमलनाथ भगवान बाह्य अभ्यन्तर दोनों प्रकार की लक्ष्मी के स्वामी हैं, कल्याण के करने वाले हैं, कर्मरूपी कीचड़ को नष्ट करने के लिए सूर्य हैं और त्रिजगत के नाथ हैं, उनको बार - बार हमारा नमस्कार हो ।

जो पद्मसेन नामक राजा हुए, फिर बारहवें स्वर्ग के इन्द्र सहस्रारेंद्र हुए और अंत में केवलज्ञान के धारक विमलनाथ तीर्थंकर हो मोक्ष प्राप्त किया, वे परम शुद्ध भगवान हमारी रक्षा करें । जिस प्रकार कमलों को सूर्य प्रफुल्लित करता है, उसी प्रकार जो भव्यों को आनन्द देने वाले हैं, मोहरूपी हाथी को भेदने के लिए सिंह हैं, इंद्र चक्रवर्ती आदि को जो चकोर को चंद्रमा के समान आह्लादक हैं। हे भव्य पुरुषों ! उन विमलनाथ भगवान की कल्याण प्राप्त करने के लिए भक्ति सेवा करो ।

मूल ग्रंथकर्ता की प्रशस्ति

विख्याते जगतीतले त्रिभुवनस्वामिस्तुतेऽभून्महान् ।
काष्ठासंघसुनामनि प्रभुयतौ विद्यागणे सुरिराट् ॥
सारंगार्णवपारगो बहुयशाः श्रीरामसेनो ।
जिनध्यानार्णोविततिप्रधूतवृजिनो भानुस्तमोरशिषु ॥
तत्क्रमेण गणभूधरभानुः सामकीर्तिरिव शीतमयूखः ।
संबभूव जनताशिखिभुक्षु नागनाथदयिताकृततेजा : ॥
तत्पदे विजयसेनमदंतो बोधितास्विलजनः कमनीयः ।

कीर्तिकांतिकमलाजलराशिः संबभूव विजयी कुमतीनां ।।
तत्पट्टे सूरिराजः सकलगुणनिधः श्रीयशः कीर्ति –
देवस्तत्पादांभोजषड्पत्सकलशशिमुखो वादिनागेंद्रसिंहः।।
संजज्ञ प्रांतसेनोदय इति वचसा विस्तरे स प्रवीणः ।
तत्पद्बार्जालिसक्तस्त्रिभुवनमहिमा तन्मुखप्रांतकीर्तिः।
राजते रजनिनाथयशांको तत्पदोदयनगाहिमदीप्तिः।
तर्कनाटककुलागमदक्षो रत्नभूषणमहाकविराजः ।।
श्रीमल्लोहाकरेभूत्परमपुरवरे हर्षनामा वरीयान् ।
तत्पत्नी साधुशीला गुणगणसदनं वीरिकाख्येव साध्वी ।।
पुत्रः श्रीकृष्णदासो रतिप इव तयोर्ब्रह्मचारीश्वरश्च ।
सत्कीर्तो राजते वै वृषभजिनपदांभोजषट्पत्समानः।।
मंगलैर्मकरकेतुदीप्तिभिर्निर्वण्णिभिः सह मया कृतोऽयक ।
ग्रंथ एव विदुषां सुखप्रदः शोधयंतु विबुधाः खलेतराः ।।
गूजरे जनपदे पुरे कृतः कल्पवल्लयभिध एकवत्सरात् ।
वर्धमानयशसा मया पुरोःपत्कजाहितसुचेतसा ध्रुव ।।
मेरुभूधरपतिः खतारकाः संति सागरधरो नभोमणिः।
तावदेष विदुषां मनोंतरेऽलंकृतः सततमेव भातु मे ।।
खत्रिसंख्यित(?)शतान्वितोऽधिको वेदषट्प्रमितकाव्यराजिभिः।
पंडितैर्मतिविकारवर्जितैः संलिखाप्य पठनाय दीयतां ।
वेदर्षिषट्चंद्रमितेऽथ वर्षे पक्षेऽसिते मासि नभस्यलंमे।
एकादशीशुक्रमृगर्क्षयोगे ध्रौव्यान्विते निर्मित एष एव।।

इति दशः सर्ग ।। १० ।।

अर्थ - पृथ्वी में प्रसिद्ध त्रिजगत् से पूज्य काष्ठासंघ में ज्ञान समुद्र के पार पहुँचे हुए रामसेन नाम के आचार्य हुए जिनकी कीर्ति सर्वत्र व्याप्त थी, जिनने जिनेन्द्र भगवान के ध्यानरूपी समुद्र की लहरों से समस्त पापों को धो दिया था और सूर्य के समान अज्ञानांधकार को नष्ट कर दिया था। । उनके आम्नाय में संघरूपी उदयाचल के सूर्य, चंद्रमा के समान सौम्य कीर्ति के नायक, सोमसेन नामक आचार्य हुए । उनके पद पर विजयसेन आचार्य हुए जिन्होंने समस्त प्राणियों को ज्ञान दिया, जो सबको प्रिय, कुमति के विजेता, कीर्ति, कांति और लक्ष्मी के समुद्र थे ।

उनके पद पर समस्त गुणों के समुद्र आचार्य श्रीयशः कीर्ति हुए । उनके पद पर वादीरूपी हाथियों के लिए सिंहस्वरूप, पूर्ण चंद्रमा के समान प्रसन्नमुख, अपने गुरु यशःकीर्ति के चरणों के लिए भ्रमर रूप और उपदेश देने में प्रवीण उदयसेन नामक आचार्य हुए । उनके पद पर जगत्प्रसिद्ध भुवनकीर्ति हुए जो अपने गुरु के चरणों की भक्ति में सदा तत्पर थे । उनके पदरूपी उदयाचल पर सूर्य के समान प्रतापी, चंद्रमा के समान यशस्वी, तर्क, नाटक और आगम में दक्ष, महाकवि रत्नभूषण हुए । (ग्रंथकर्ता इनके ही शिष्य थे जैसा कि सर्ग के अंत में दिये हुए परिचय से ज्ञात होता है।)

लोहाकर नगर में हर्ष नामक एक श्रेष्ठ गृहस्थ थे ।

उनके गुणवती साध्वी सुशीला वीरिका नाम की पत्नी थी । उनके कामदेव के समान मनोहर श्रीकृष्णदास नाम का पुत्र हुआ, जो ब्रह्मचारीश्वर था, श्रेष्ठ कीर्ति वाला था और वृषभ जिनेंद्र के चरण कमलों का भ्रमर के समान सेवक था । उसी ने मुझे कामदेव के समान दीप्ति वाले श्रीमान् मंगलदास की सहायता से यह विद्वानों को सुख प्रदान करने वाला ग्रंथ बनाया है। सज्जन विद्वान् इसको जहाँ अशुद्ध समझें तो शोध दें । इस ग्रंथ को मैंने आदिनाथ भगवान के चरणों में मन लगाकर गुजरात देश के कल्पवल्ली नगर में बनाया है और एक वर्ष बनाने में लगा है। यह ग्रन्थ, जब तक इस संसार में सुमेरु पर्वत है, आकाश व्याप्त है, तारे प्रकाशमान है, समुद्र प्रवाहित है, और

सूर्य दैदीप्यमान है, तब तक विद्वानों के हृदय में सुशोभित रहे । इस ग्रन्थ में कुल दो हजार तीन सौ चौसठ श्लोक हैं। निष्पक्ष बुद्धिमानों को चाहिए कि व इसे लिखाकर इसको पठनार्थ प्रदान करें । इस ग्रंथ का निर्माण संवत् 1674 में श्रावण मास की कृष्णपक्ष एकादशी शुक्रवार को मृग नक्षत्र और ध्रुव तारा के उदय रहने पर हुआ है।

दसवाँ सर्ग समाप्त हुआ ।। 10 ।।

प. पू. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, दीक्षा सम्राट
आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी महाराज द्वारा रचित, संपादित साहित्य

1. निज अवलोकन
2. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
3. हमारे आदर्श
4. चित्रसेन पद्मावती चरित्र
5. नंगानंग कुमार चरित्र
6. धम्म रसायण
7. मौनव्रत कथा
8. सुदर्शन चरित्र
9. प्रभंजन चरित्र
10. सुरसुन्दरी चरित्र
11. जिनश्रमण भारती
12. सर्वोदयी नैतिक धर्म
13. चारुदत्त चरित्र
14. करकण्डु चरित्र
15. रयणसार
16. नागकुमार चरित्र
17. सीता चरित्र
18. योगामृत भाग-1
19. योगामृत भाग-2
20. आध्यात्मतरंगिणी
21. सप्त व्यसन चरित्र
22. वीर वर्धमान चरित्र भाग-1
23. वीर वर्धमान चरित्र भाग-2
24. भद्रबाहु चरित्र
25. हनुमान चरित्र
26. महापुराण भाग-1
27. महापुराण भाग-2
28. योगसार-भाग-1
29. योगसार-भाग-2
30. भव्य प्रमोद
31. सदार्चन सुमन
32. तत्वार्थ सार
33. कल्याण कारक
34. श्री जम्बूस्वामी चरित्र
35. आराधना सार
36. यशोधर चरित्र
37. व्रतकथा संग्रह
38. तनाव से मुक्ति
39. उपासकाध्ययन भाग -1
40. उपासकाध्ययन भाग -2
41. रामचरित्र भाग-1
42. रामचरित्र भाग-2
43. नीतिसार समुच्चय
44. आराधना कथा कोश भाग-1
45. आराधना कथा कोश भाग-2
46. आराधना कथा कोश भाग-3
47. दशामृत (प्रवचन)

48. सिन्दूर प्रकरण
49. प्रबोध सार
50. शान्तिनाथपुराण भाग-1
51. शान्तिनाथ पुराण भाग-2
52. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार
53. सम्यक्त्व कौमुदी
54. धर्मामृत भाग-1
55. धर्मामृत भाग-2
56. पुण्य वर्द्धक
57. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-1
58. पुण्यास्रव कथा कोश भाग-2
59. चौंतीस स्थान दर्शन
60. अकंपमती
61. सार समुच्चय
62. दान के अचिन्त्य प्रभाव
63. पुराण सार संग्रह भाग-1
64. पुराण सार संग्रह भाग-2
65. आहार दान
66. सुलोचना चरित्र
67. गौतम स्वामी चरित्र
68. महीपाल चरित्र
69. जिनदत्त चरित
70. सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
71. चेलना चरित्र
72. धन्यकुमार चरित्र
73. सुकुमाल चरित्र
74. कुरल काव्य
75. धर्म संस्कार भाग-1
76. प्रकृति समुत्कीर्तन
77. भगवती आराधना
78. निर्ग्रंथ आराधना
79. निर्ग्रंथ भक्ति
80. कर्मप्रकृति
81. पूजा-अर्चना
82. नौ-निधि
83. पंचरत्न
84. व्रताधीश्वर-रोहिणी व्रत
85. तत्वार्थस्य संसिद्धि
86. रत्नकरण्डक श्रावकाचार
87. तत्त्वार्थ सूत्र
88. छहढाला (तत्त्वोपदेश)
89. छत्रचूड़ामणि(जीवंधर चरित्र)
90. धर्म संस्कार भाग-2
91. गागर में सागर
92. स्वाति की बूँद
93. सीप का मोती
(महावीर जयन्ती प्रवचन)
94. भावत्रय फलप्रदर्शी
95. सच्चे सुख का मार्ग
96. तनाव से मुक्ति-भाग-2
97. कर्म विपाक

98. अन्तर्यात्रा
99. सुभाषित रत्न संदोह
100. अरिष्ट निवारक विधान संग्रह
101. पंचपरमेष्ठी विधान
102. श्री शांतिनाथ भक्तामर, सम्मेदशिखर विधान
103. मेरा संदेशा
104. धर्म बोध संस्कार 1,2,3,4
105. सप्त अभिशाप
106. दिगम्बरत्वः क्या, क्यों, कैसे?
107. जिनदर्शन से निजदर्शन
108. निश भोजन त्यागः क्यों?
109. जलगालनः क्या, क्यों, कैसे?
110. धर्मः क्या, क्यों, कैसे?
111. श्री महावीर भक्तामर स्तोत्र
112. मीठे प्रवचन 1,2,3,4
113. कल्याणी
114. कलम-पट्टी बुद्धिका
115. चूको मत
116. खोज क्यों रोज-रोज
117. जागरण
118. सीप का मोती
119. जय बजरंग बली
120. शायद यही सच है
121. डाक्टरों से मुक्ति
122. आ जाओ प्रकृति की गोद में
123. भगवती आराधना
124. चैन की जिन्दगी
125. धर्मरत्नाकर
126. हाइकू
127. स्वप्न विचार
128. क्षरातीत अक्षर
129. वसुनंदी उवाच
130. चन्द्रप्रभ चरित्र
131. चन्द्रप्रभ विधान
132. कोटिभट्ट श्रीपाल चरित्र
133. महावीर पुराण
134. वरांग चरित्र
135. पदमपुराण
136. विषापाहार स्तोत्र
137. पाण्डव पुराण
138. हीरों का खजाना
139. तत्वभावना
140. सम्राट चन्द्रगुप्त
141. जीवन का सहारा
142. धर्म की महिमा
143. जिन कल्पि सूत्रम्
144. विद्यानंद उवाच
145. सफलता के सूत्र
146. तत्वज्ञान तरंगनी
147. जिन कल्पि सूत्रम्
148. दुःखों से मुक्ति

149. णमोकार महार्चना
150. समाधि तंत्र
151. सुख का सागर
152. पुरूषार्थ सिद्धीउपाय
153. सुशीला उपन्यास
154. तैयारी जीत की
155. सदार्चन सुमन
156. शान्तिनाथ विधान
157. दिव्यलक्ष्य
158. आधुनिक समस्याऐं
प्रमाणिक समाधान
159.वसुऋद्धि
160.संस्कारादित्य
161.मुक्तिदूत के मुक्तक
162.श्रुत निर्झरी
163. जिन सिद्धांत महोदधि
164. उत्तम क्षमा
165. मान महा विष रूप
166. तप चाहें सुर राय
167. जिस बिना नहिं जिनराज सीजे
168. निज हाथ दीजे साथ लीजे
170. परिग्रह चिंता दुःख ही मानो
171. रंचक दगा बहुत दुःख दानी
172. लोभ पाप को बाप बखाना
173. सतवादी जग में सुखी
174. उत्तम ब्रह्मचर्य
175. पार्श्वनाथ पुराण
176. गुण रत्नाकर
177. नारी का धवल पक्ष
178. खुशी के आँसू
179. आज का निर्णय
180. गुरू कृपा
181. तत्व विचारो सारो
182.अजितनाथ विधान

प्रेस में:-

फर्श से अर्श तक
स्वास्थ बोधामृत
कुछ कलियॉ कुछ फूल
प्रभाती संग्रह
आदिनाथ विधान
मुनिसुव्रतनाथ विधान
नेमिनाथ विधान
नवग्रह विधान
आराधना समुच्चय
आदि

सम्पूर्ण विश्व की हलचलों व
आचार्य श्री वसुनंदी जी गुरूदेव ससंघ
की जानकारी घर बैठे प्राप्त करने के लिऐ
श्री सत्यार्थी मीडिया
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका के सदसस्य बनें
9058017645